परिभाषा।

श्रीमान् पंडित दौलतरामजीने यह छह ढाला रचकर जैनजातिके साथ अघटित और अविसरणीय उपकार किया है। यह छह ढाला बालक और बालिकाओंको जैनधर्मका ज्ञान सुगमतासे देनेके सिवाय विद्वान जैन पुरुष और विदुषी जैन स्त्रियोंको परमानन्दका देनेवाला है। इस छह ढालेका अर्थ सुगम न होनेके कारण केवल मूलपरसे अर्थ, सिवाय विद्वानोंके दूसरोंके समझमें नहीं आता। इसलिये इसकी टीकाकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसकी एक टीका स्वर्गप्राप्त मुंशी अमनसिंहजी सुनपत निवासीने वि० सं० १९५२ में बनाकर १००० प्रति मुद्रित कराई थीं। सो बहुत शीघ्र समाप्त होगई। यह टीका विद्यार्थियोंके लिये विशेष लाभकारक न थी। इसकारण यह नई टीका विशेषकर विद्यार्थियोंको सुगम पड़े इस रीतिसे लिखी गई है। इसमें व्याकरणके बोध होनेके लिये शब्दोंके अर्थ लिखते समय उनके आगे व्याकरणके नीचे लिखे अनुसार चिन्ह दे दिये गये हैं।

१-संज्ञा—जो किसी वस्तु अथवा पुरुषका नाम हो। जैसे-घोड़ा, राम, चंद्र, टोपी। इसका चिन्ह 'सं०' है।

२-विशेषण—जो संज्ञाका गुण-औगुण बतलावे, जैसे-भला आदमी, यहां 'भला' विशेषण है। इसका चिन्ह (वि०) है।

३-सर्वनाम—जो संज्ञाके स्थानमें आवे, जैसे-राम यहां आया और उसने भोजन किया, यहां 'उसने' सर्वनाम है। इसका चिन्ह (स०) है।

४-क्रिया—जो कार्यको बतलावे और जिसके बिना वाक्यका अर्थ नहीं निकले। जैसे-रामने अमरूद खाया, यहां 'खाया' क्रिया है। इसका चिन्ह (क्रि०) है।

५–क्रियाविशेषण—जो मुख्यता करके क्रियाकी प्रशंसा करे, जैसे–राम शीघ्र जाता है, यहां 'शीघ्र' क्रिया विशेषण है। इसका चिन्ह, (क्रि० वि०) है।

६–संबंधवाचक अव्यय—जो एक वस्तुका संबंध दूसरेसे मिलावे तथा विभक्तिकी पूर्ति करे, जैसे–राम मंदिरमें है, यहां 'में' संबंधवाचक अव्यय है। इसका चिन्ह (सं० अ०) है।

७–संयोगिक अव्यय—जो दो शब्दों अथवा दो वाक्योंको जोड़े, जैसे राम और गोविंद घर गये, यहां 'और' संयोगिक अव्यय है। इसका चिन्ह (संयो० अ०) है।

८–भाववाचक अव्यय—जिस शब्दसे एकाएक कोई भाव प्रगट हो, जैसे–हाय! मैं मरगया, यहां 'हाय' भाववाचक अव्यय है। इसका चिन्ह (भा० अ०) है।

अध्यापकों को चाहिये कि व्याकरणकी रीति विद्यार्थियोंको अच्छी तरह समझा दें तथा कविताका अन्वय कराते हुए उसका अर्थ समझावें। अन्वय करनेसे कर्ता, कर्म, क्रिया, सब एक डोरीमें आकर अर्थ शीघ्र निकाल देते हैं। इस टीकाके बनानेमें मुन्शी अमनसिंहकृत टीकाकी भी सहायता ली गई है। इसकी २००० प्रति प्रकाशित हो चुकीं थीं अब फिरसे प्रकाशित की जाती हैं तथा जो अशुद्धियां रह गई थीं वे निकाल दी गई हैं तथापि फिर भी जो कहीं शब्द, वाक्य, अर्थ, भावार्थमें अशुद्धि रह गई हों तो विद्वज्जन महाशय क्षमा करें, और उसे ठीक करके वांचें तथा हमें भी सूचना कर दें जिसमें कि वे तीसरी आवृत्तिमें ठीक हो जांय।

ता० २०–१०–१०ई. सीतलप्रसाद.

कृपाकर इन अशुद्धियोंको ठीक करके फिर पढ़ियेगा।

शुद्धाशुद्ध पत्र.

पृष्ठ नं०	पंक्ति नं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
७	१७	चरित्र	चारित्र
७	२४	तन	चेतन
१२	१	औ	और
१३	६-७	वालंको	वालोंको
१५	११	सहित	सहित,
१५	१४	कनेरवाले	करनेवाले
१५	१५	सम्मक्दृष्टी	सम्यग्दृष्टी
१५	५	संघर	संवर
२१	३	आत्मको	आत्माको
२१	४	सम्यक्त	सम्यक्तको
२२	६	दर्शनसौ	दर्शनसों
२२	१५	गत	मत
२३	४	आत्मका	आत्माका
२५	१०	करै	करो
३२	२५	वारंवार	१२ भावना
३६	१६	हुए	हुए
४५	७	पारा, चार	पारा,—वार

कविवर पं० दौलतरामजी कृत

छहढाला।

सोरठा।

तीनभुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकें॥

भुवन=(सं०) लोक. शिव=(सं०) आनन्द.
विज्ञानता=(सं०) केवल ज्ञानरूप विद्या. त्रियोग=(सं०) मन वचन काय.

मैं (पंडित दौलतरामजी) अपने मन, वचन, कायको सम्हाल करके तीनलोकमें उत्तम आनन्दरूप, और सुख करनेवाली ऐसी वीतराग (१८ दोष रहित) स्वरूप केवलज्ञान-रूपी विद्याको नमस्कार करता हूं।

प्रथमढाल—चौपाई छन्द १५ मात्रा.

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त। सुख चाहैं दुखतें भयवन्त॥
तातें दुखहारी सुखकार। कहैं सीख गुरु करुणाधार॥ १॥

भयवन्त=(वि०) डरतेहुए. करुणा=(सं०) दया, कृपा.

तीनलोकमें जितने अनन्त (जिनका अन्त नहीं) जीव हैं, सब सुख चाहते हैं और दुःखसे डरते हैं। इसलिये श्रीगुरु दुःखको दूरकरने वाली और सुखको पैदा करनेवाली ऐसी शिक्षाको दयाकरके कहते हैं।

ताहि सुनो भवि मन थिरआन। जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह महामद पियो अनादि। भूल आपको भरमत वादि॥

अनादि=(वि०) ऐसा काल जिसका शुरू नहीं है.
महामद=(सं०) तेज शराब. वादि=(अ०) बेमतलब.

हे भव्यजीव! जो अपना भला चाहते हो तो उस शिक्षाको मन रोककरके सुनो। यह जीव अनादि कालसे मोह (संसारमें तन, धन, पुत्र आदिसे मजबूत नेह) रूपी तेज मदिराको पिये हुए और अपने आत्माके स्वरूपको भूले हुए बेमतलब फिरता आया है।

तास भ्रमणकी है बहु कथा। पै कछु कहूं कही मुनि यथा॥
काल अनन्त निगोद मँझार। बीत्यो एकेन्द्री तनधार॥२

भ्रमण=(सं०) संसारमें फिरने. मँझार=(सं० अ०) भीतर.
यथा=(क्रि० वि०) जैसा. एकेन्द्री=जिसके एक इन्द्री अर्थात केवल शरीरमात्र हो, जिससे पदार्थको छूकर ठंडा, गरम, हलका, नरम आदि मालूम करे। इस इन्द्रीका नाम स्पर्शन इन्द्री है।

जिस जीवके संसारमें फिरनेकी बहुत बड़ी कहानी है; परन्तु मैं जैसा कि, मुनियोंने कहा है कुछ कहता हूं। एकेन्द्री शरीरको धारण किये हुए इस जीवने अनन्तकाल तो निगोदके भीतर बिताये।

एक स्वासमें अठ दशवार। जन्म्यों मर्यो भर्यो दुख भार
निकसि भूमि जल पावक भयो। पवन प्रत्येकवनसपति थयो

भर्यो=(क्रि०) सहता हुआ. पावक=(सं०) अग्नि, आग.
भार=(सं०) बोझा. पवन=वायु, हवा.
भूमि=(सं०) जमीन. प्रत्येकवनसपति=(सं०) ऐसी वृक्ष-(झाड़) जाति जिसमें एक जीव एकके सहारे रहे। साधारण वनस्पति वे हैं जिनमें एकके आश्रय अनेक जीव रहें।

उस निगोदके भीतर यह जीव एक श्वासमात्र (एक मुहूर्त जो कि दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनिटका होता है, उसमें ३७७३ श्वास होते हैं) समयमें १८ अठारह दफे जन्म मरण करता, दुःखके बोझको सहता हुआ वहांसे (बड़ी कठिनतासे) निकलकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और प्रत्येकवनसपति, ऐसे पांच तरहके एकेन्द्री स्थावर जीव होता हुआ।

दुर्लभ लहि ज्यौं चिन्तामणी। त्यौं पर्याय लही त्रसतणी॥
लटपिपील अलि आदिशरीर। धरधर मर्यो सही वहुपीर॥

दुर्लभ=(क्रि० वि०) कठिनतासे.
लहिये=(क्रि०) पाइये.
पर्याय=(सं०) अवस्था, शरीर.
त्रस=(सं०) दो इंद्रीसे लेकर पाँचइंद्री-तकके जीवोंको 'त्रस' कहते हैं।
लट=(सं०) यह दो इंद्री जीव है। इसके एक रसना (स्वाद लेनेवाली) इंद्री अधिक होती है, स्पर्शन, जो कि पहली इन्द्री है, सब जीवोंके होती है।
पिपील=(सं०) चीटी-कीड़ी, इसके तीन इन्द्री होती है। एक घ्राण (सूँघनेकी) इन्द्री अधिक होती है।
अलि=(सं०) भौंरा, इसके चार इन्द्री होती हैं। एक चक्षु (देखनेकी) इन्द्री अधिक होती है।
पीर=(सं०) दुःख.

जैसे चिन्तामणि रत्न वड़ी कठिनतासे मिलता है तैसे त्रस जीवोंका शरीर पाना मुश्किल है। इस जीवने लट, कीड़ी, भौंरा वगैरह शरीरोंको वार वार धर धरकर मरन किया, और वहुत दुःख सहा है।

कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो। मनविन निपट अज्ञानी थयो॥
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर। निवल पशू हति खाये भूर॥६॥

पंचेंद्रिय पशु=(सं०) ऐसे जानवर जिनके स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र-कान (सुननेवाली इन्द्री), ऐसे पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।
निपट=(क्रि० वि०) विलकुल.
सेनी=(वि०) मन सहित.
क्रूर=(वि०) दुष्ट.
हति=(क्रि०) मारके.
भूर=(वि०) वहुतसे.

कभी यह जीव मन विना विलकुल अज्ञानी ऐसा पंचेन्द्री पशु भया। कभी मनसहित दुष्ट सिंह वगैरह पंचेन्द्री पशु भया, जव वहुतसे निर्वल पशुओंको मारके खाता हुआ।

कबहूँ आप भयो बलहीन। सबलनिकरि खायो अति दीन।
छेदन भेदन भूख प्यास। भारवहन हिम आतपत्रास॥७॥

वहन=(क्रि०)ढोना. हिम=(सं०)ठंढी. आतप=(सं०)गरमी. त्रास=(सं०)दुःख.

कभी यह जीव आप निर्बल पशु हुआ, तब महादुःखी होकर अपनेसे जो बलवान पशु थे उनसे खाया गया। छेदाजाना, भेदाजाना, भूख, प्यास, बोझा, ठँढी, गरमीके दुःख तथा।

बध बंधन आदिक दुख घने। कोट जीभतें जात न भने॥
अति संक्लेशभावतें मर्‍यो। घोर शुभ्रसागरमें पर्‍यो॥८॥

भने=(क्रि०) कहना. घोर=(वि०) भयानक.
संक्लेशभाव=(सं०) खोटे परिणाम. शुभ्रसागर=(सं०) नर्करूपी समुद्र.

माराजाना, बांधाजाना, वगैरह बहुत दुःख, जो करोड़ों जबानोंकरभी नहीं कहे जासक्के, इस जीवने पशुपर्यायमें सहे हैं। जब यह जीव बहुतही खोटे भावोंसे मरा, तो भयानक नर्करूपी समुद्रमें गिरपड़ा।

तहाँ भूमि परसत दुख इसो। बीछू सहँस[१०००] डसें नहिं तिसो॥
तहाँ राध श्रोणित वाहिनी। कृमकुल कलित देहदाहिनी॥

राधश्रोणित=(वि०) लहूकी भरीहुई. कृमकुल=(सं०) कीड़ोंका ढेर.
वाहिनी=(सं०) नदी. कलित=भरीहुई.

तिस नरककी जमीनको छूनेसे इतना दुःख होता है, जितना कि हजार बिच्छुओंके काटनेसे भी नहीं होता; तिस नर्कमें लोहू और कीड़ोंसे भरीहुई तथा देहको जलानेवाली ऐसी नदी बहती है।

सेमरतरु जुत दल असिपत्र। असि ज्यों देह विदारें तत्र॥
मेरुसमान लोह गलिजाय। ऐसी शीत उष्णता थाय॥१०॥

सेमर तरु=(सं०)एकतरहका कांटेदार झाड़. असिपत्र=(सं०) तलवारकी धा
दल=(सं०) पत्ता. विदारें=(क्रि०) चीरते हैं.
तत्र=तहां.

तिस नरकमें तलवारकी धारसमान जिनके पत्ते ऐसे सेमरके वृक्ष हैं, जो तलवारके समान शरीरको चीरते हैं। वहां ठंढक और गरमी इतनी है कि मेरु पर्वत (जो एक लाख योजन ऊंचा है) के बराबरका लोहेका गोला भी गल जा सक्ता है।

तिल तिल करैं देहके खंड। असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचंड ॥
सिंधुनीरतें प्यास न जाय। तो पण एक न बूँद लहाय॥११

असुर=(सं०) असुरकुमारजातिके देव जो तीसरे नर्क तक जाकर नारकियोंको आपसमें लड़ातेहैं और आप उनका दुःख देख खुश होते हैं।

उस नरकमें नारकी एक दूसरेकी देहके टुकड़े २ कर डालते हैं, (उनकी देह पारेके समान फिर मिलजातीहै) तथा प्रबल दुष्ट असुर कुमार देव नारकियोंको लड़ाते हैं। नरकमें प्यास इतनी है कि, समुद्रभर पानी पियें तब भी प्यास न बुझे, परन्तु एक बूँदभर जल नहीं मिलता।

तीनलोकको नाज जो खाय। मिटै न भूख कणा न लहाय॥
ये दुख बहु सागरलों सहै। करमजोगतें नरगति लहै॥१२॥

सागर=(सं०)वर्षोंका प्रमाण, अपनी समझकी अपेक्षा जिसके वर्ष अनगिनती हैं.

नरकमें भूख इतनी अधिक मालूम होती है कि, जो तीनलोकका सब अनाज खालें तब भी भूख न मिटै, परन्तु एक दाना भी नहीं मिलता। ऐसे २ दुःख यह जीव बहुतसे सागरोंतक सहा करताहै, कोई शुभ कर्मका निमित्त मिले तो यह जीव मनुष्यगति प्राप्त करै।

जननी उदर बस्यो नव मास। अंग सकुचतैं पाई त्रास ॥
निकसत जे दुख पाये घोर। तिनको कहत न आवै ओर ॥

जननी=(सं०) माता. उदर=(सं०) पेट. ओर=(सं०) अन्त.

मनुष्यगतिमें माताके पेटमें नव महीने रहा, वहाँ शरीर सुकड़ाहुआ रहनेसे दुःख उठाया। पेटसे निकलतेहुए जो भयानक दुःख भोगा, उनको कहनेसे अन्त नहीं आसक्ता।

बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणी रति रह्यो॥
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो। कैसे रूप लखै आपनो॥ १५॥

तरुण=(सं०) जवानी.　　　　तरुणी=(सं०) स्त्री.
रति रह्यो=(क्रि०) मन लगाया.　　　　अर्द्धमृतक=(सं०) अधमरा.

लड़कपनमें तो ज्ञान प्राप्त नहीं किया, जवानीमें स्त्री में मन लगाया, तीसरी अवस्था जो बूढ़ापन वह अधमरे आदमीके समान बेकाम होती है। ऐसी दशामें यह जीव अपने रूपको कैसे पहिचाने (मनुष्यगतिका कोई समय ही बाकी न रहा)।

कभी अकाम निर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुर तन धरै॥
विषयचाह-दावानलदह्यो। मरत विलापकरत दुख सह्यो॥

अकाम निर्जरा=(सं०) समतासे कर्मोंका फल भोगना, फिर कर्मोंका झड़िजाना.
भवनत्रिक=(सं०) तीन जातिके देव—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी.
सुर=(सं०) देव.　　　　दावानल=अग्नि, (बड़वाग्नि).

कभी इस जीवने अकाम निर्जरा करी तो मरकर भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, इन तीन तरहके देवोंमें कहीं देवका शरीर धारण किया। परन्तु वहाँ भी हर समय पाचों इंद्रियोंके विषयोंकी चाहरूपी आगमें जलता रहा। और जब मरा तब रो २ कर दुःख सहन किया।

जो विमानवासी हू थाय। सम्यक्दर्शनविन दुख पाय॥
तहँते चय थावर-तन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै॥ १६॥

विमानवासी=(सं०) चौथीजाति, स्वर्गवासी देव.
सम्यक्दर्शन=(सं०) आत्माका और परका ठीक २ निश्चय, देव गुरु धर्मकी ठीक श्रद्धा.
चय=(क्रि०) आकर.　　　　थावर तन=एकेन्द्रियका शरीर.
परिवर्तन=(सं०) संसारमें घूमना, व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव.

जो कहीं यह जीव स्वर्गमें भी पैदा हुआ तो वहां सम्यग्दर्शन विना सदा क्लेश उठाया करता है ऐसी दशामें देवगतिसे आकर थावरके

दुःखरूप शरीरको धरताहै। इस तरह यह जीव संसारमें चक्रोंको किया करता है।

पहली ढालका भावार्थ

इस संसारमें चार गति हैं। पशु, नरक, मनुष्य और देव। इन गतियोंमें यह जीव अनन्तवार घूम आया तथा अपने भावोंके अनुसार कर्म बांध घूमा करता है। हरएक गतिमें बहुत २ दुःख सहना पड़ताहै, पशु और मनुष्यगतिके दुःख तो अपने सामने ही दीखते हैं। इन चारों गतिसे छूटनेका उपाय जो सम्यग्दर्शन है वह इसको नहीं मिला, सम्यग्दर्शन होनेसे ही जीवको सुख होता है।

द्वितीय ढाल—पद्धरीछंद १५ मात्रा।

ऐसें मिथ्या-दृगज्ञानचर्णवश भ्रमत भरत दुख जन्ममर्ण॥
तातें इनको तजिये सुजान। सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥१

मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण=(सं०) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र जो सुखके कारण हैं उनके उल्टे, यह तीनों दुःखके कारण हैं। खाली श्रद्धासे कोई काम नहीं होता, श्रद्धाके साथमें ज्ञान और आचरण होना ही चाहिये।

मिथ्या-दर्शन ज्ञान चरित्रके कारणसे यह जीव ऊपर कहे अनुसार घूमता है और जन्म-मरणके दुःख सहता है। इसलिये इन तीनोंको भलीप्रकार जानके छोड़ना चाहिये। मैं आगे तिनका खुलासा कहता हूं।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व। सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व॥
चेतनको है उपयोग रूप। विनमूरति चिन्मूरति अनूप॥२

जीवादि=(सं०) जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष।
प्रयोजनभूत=(वि०) मतलबके (संसारसे छुटानेमें)
(चे)तन=(सं०) आत्मा, जीव. विपर्ययत्व=(सं०) उल्टा. उपयोग=(सं०) जानना, देखना.

विनमूरति=(वि०) जड़रूप मूर्ति जिसकी नहीं है.
अनूप=(वि०) तीनलोकमें जिसकी उपमा नहीं मिलती.
चिन्मूरति=(वि०) चैतन्यरूप मूर्ति जिसकी है.

मोक्षमार्गमें जीवादि सात तत्त्वोंका श्रद्धान अपने मतलबका है, उनका स्वरूप औरका और उल्टा श्रद्धान करलेना सो मिथ्यादर्शन है तथा अपने आत्माका स्वरूप जानने देखनेका है, यह आत्मा जड़मई कोई मूर्त्ति नहीं रखता, परन्तु इसकी चैतन्यमूर्ति है, इसकी उपमा (मिसाल) नहीं दीजासक्ती, और—

पुदगल नभ धर्म अधर्म काल। इनतैं न्यारी है जीवचाल॥
ताकों न जान विपरीत मान। करि, करै देहमें निजपिछान॥

न्यारी=(वि०) जुदी, अलग. चाल=(सं०) स्वभाव.
विपरीत=(सं०) उल्टा.

इस आत्माका स्वभाव पुदगल, आकाश, धर्म, अधर्म और काल इन पांचों द्रव्यों (जिनका स्वरूप आगे कहेंगे) से जुदा है। ऐसा आत्माका स्वरूप न जान, किन्तु इससे उल्टा मान, अपनी देहको ही आत्मा समझता है यह मिथ्यादर्शनकी महिमा है।

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव। मेरो धन गृह गोधन प्रभाव॥
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥

रंक=(सं०) गरीब. राव=(सं०) राजा. गोधन=(सं०) गाय भैंसादि
प्रभाव=(सं०) बड़प्पन. तिय=(सं०) स्त्री. सुभग=(वि०) सुन्दर.

मिथ्यादर्शनके कारणसे यह जीव ऐसा माना करता है कि, मैं सुखी हूं, मैं दुखी हूं, मैं गरीब हूं, मैं राजा हूं, यह मेरा रुपया पैसा है, यह मेरा घर है यह मेरी गाय भैंसें हैं, यह मेरा बड़प्पन है, ये मेरे लड़के हैं, यह मेरी स्त्री है, मैं बलवान हूं, मैं निर्बल हूं, मैं कुरूप हूं, मैं सुन्दर हूं, मैं मूर्ख हूं, मैं चतुर हूं,

तन उपजत अपनीउपजजान। तननशतआपकोनाशमान
रागादि प्रगट ये दुःख दैन। तिनहीको सेवत गिनत चैन५

मिथ्यादर्शनके कारणसे यह जीव शरीरके जन्मको अपना जन्म और शरीरके नाशको अपना मरण मानलेताहै। जो राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभआदि अपने देखते जीवोंको दुःख देतेहैं उनहींकी सेवा करताहुआ सुख गिनलेताहै।

शुभअशुभ वंधकेफल मंझार। रतिअरतिकरैनिजपदविसार
आतम हित हेतु विराग ज्ञान। ते लखे आपकूं कष्ट दान ६

रति=(सं०) रुचि. विसार=(क्रि०) भूलकर. हेतु=(सं०) कारण.

मिथ्यादृष्टीजीव पूर्वमे बाँधेहुए शुभकर्मके फलभोगनेमें तो रुचि और अशुभकर्मके फल भोगनेमें अरुचि करताहै क्योंकि वह अपने आत्माके रूपको भूलेहुएहै तथा जो अपने आत्माके भलाईके कारण ऐसे वैराग्य और ग्यान हैं उन्हींको अपनेलिये दुखदाई समझताहै।

रोकैन चाह निज शक्ति खोय। शिवरूप निराकुलतान जोय
याही प्रतीति युत कछुकज्ञान। सो दुखदायक अज्ञानजान७

निराकुलता=(सं०) चिन्तारहित मोक्षसुख. प्रतीति=(सं०) श्रद्धा।

मिथ्यादृष्टीजीव अपने आत्माकी शक्ति (ताकत) को खोकर अपनी इच्छाओंको नहीं रोकताहै और न चिन्तारहित आनन्दरूप मोक्षसुखको ढूँढताहै—इसी उल्टी श्रद्धा सहित, जो कुछभी ज्ञान होताहै उसीको कष्टदाता अज्ञान अथवा मिथ्याज्ञान जानना चाहिये।

इन जुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताकूं जानो मिथ्या चरित्त॥
यो मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह। अव जे गृहीत सुनिये सुतेह८

जुत=(अ०) सहित. प्रवृत्त=(क्रि०) वर्ताव करना।
निसर्ग=(वि०) जो स्वभावसेहों. गृहीत=(वि०) इस भवमें मानलियेहों।

मिथ्या दर्शन और मिथ्या ज्ञानके साथमें पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमे वर्ताव करना सो मिथ्या चारित्रहै. इसतरह मिथ्यादर्शन, मिथ्या-ज्ञान, और मिथ्याचारित्र जो स्वभावसेही अनादिकालसे जीवोंके बने रहतेहैं, उनका वर्णन किया । अब आगे इन तीनोंको इस भवमेंही जैसा जीव देखताहै ग्रहण करलेताहै उनका वर्णन करतेहैं ।

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव । पोखैं चिर दर्शन मोह एव॥
अंतर रागादिक धरैं जेह । बाहर धन अंबरतैं सनेह ९
धारै कुलिंग लहि महत भावाते कुगुरु जन्म जल उपलनाव

पोखैं=(क्रि०) मजबूत करतेहैं. चिर=(क्रि० वि०) सदा ।
अंबर=(सं०) कपड़ा. कुलिंग=(सं०) खोटे भेष.
महत=(वि०) बड़े पनेके. उपल=(सं०) पत्थर.

जो खोटेगुरु, खोटेदेव, और खोटे धर्मकी सेवा करना सो मिथ्या-दर्शनहै । इनकी सेवा दर्शन मोह नामा कर्मको सदा मजबूत कर-तीहै । जो मनके भीतर तो रागद्वेष धरैं, और बाहर धन, कपड़ा आदिसे नेह करैं और अपनेको बड़ा मानके खोटे भेष धारण करैं वे कुगुरु संसार समुद्रसे तिरनेकेलिये पत्थरकी नांवके समानहैं ।

जे रागद्वेष मलकरिमलीन।बनिता गदादिजुतचिन्हचीन्ह
तेहैं कुदेव तिनकीजु सेवा।शठ करत न तिन भवभ्रमणछेव

बनिता=(सं०) स्त्री. चीन्ह=(क्रि०) पहचानना. शठ=(सं०) मूर्ख.
भव=(सं०) संसार. छेव=(क्रि०) कटना.

जो देव राग और द्वेष रूपी मैलकर मैले हैं तथा स्त्री व गदा वगैरह हथियारोंको लियेहुएहैं वे सब खोटे देवहैं ऐसे देवों (भवानी; देवी, काली, महादेव, कृष्ण आदि) की सेवा मूर्खलोग करतेहैं तिनके संसारका कटना नहीं होसक्ता ।

रागादि भाव हिंसा समेत। दर्वित त्रसथावर मरण खेत ११
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म। तिन सरधे जीव लहे अशर्म॥
याकूं ग्रहीत मिथ्यात जान। अब सुन ग्रहीत जो है अजान१२

भावहिंसा=(सं०) भावोंका दुखना दुखाना.
दर्वित=(वि०) प्रगटरूपसे प्राणोंका जाना हो जिसमें.
खेत=(सं०) ठिकाना. अशर्म=(सं०) दुख.

जिन कार्योंमें रागद्वेष पैदा हो, अपने और दूसरेके भावोंको दुःख हो तथा प्रगटरूप त्रस और थावर जीवोंके मरनेका ठिकानाहो उनको खोटा धर्म जानो, ऐसे कुधर्मको जो धर्म समझे वह दुखपाताहै, ऊपर कहे अनुसार खोटे गुरु, देव, और धर्मका जो श्रद्धान सो ग्रहीत मिथ्यादर्शनहै अब ग्रहीतमिथ्याज्ञानका हाल सुनो।

एकान्त बाद–दूषित समस्त। विषयादिक पोषकअप्रशस्त॥
कपिलादिरचित श्रुतकाअभ्यास। सोहै कुबोध बहुदेनत्रास

एकान्तवाददूषित=(वि०) जो एकनयको पकड़कर उसके हठसे दोषीहों,
समस्त=(वि०) सब. अप्रशस्त=(वि०) खोटे.

जो एकान्तपक्षसे दोपीहैं, पंचेंद्रियोंके विषय कषायोंके दृढ़ करनेवालेहैं और कपिल आदिके बनाये हुए हैं ऐसे सर्व खोटे शास्त्रोंका पढ़ना सो बहुत दुःख देनेवाला मिथ्याज्ञान है।

जो ख्यातिलाभपूजादि चाह। धरकरतविविधविधदेहदाह
आतम अनातमके ज्ञान हीन। जेजे करनी तन करन छीन

ख्याति=(सं०) नामवरी. विविध=(वि०) नानाप्रकार.
करनी=(सं०) कार्य. छीनकरन =(वि०) नाशकरनेवाली.
अनात्म=(सं०) देहादि.

अपनी नामवरी, रुपये पैसेका लाभ और अपनी पूजा प्रतिष्ठाकी चाहना मनमें धारकर जो तरह २ की रीतियोंसे शरीरको जलाना

तथा जीव औ देहके भेदको न जान जो २ दूसरे अधर्मके काम शरीर को नाश करनेवालेहैं वे सब ग्रहीत मिथ्याचारित्र हैं ।

ते सब मिथ्या चारित्र त्याग।अब आतमके हितपंथ लाग॥
जगजालभ्रमणकोदेयत्याग।अबदौलतनिजआतमसुपाग

पंथ=(सं०) मार्ग.　　पाग=(क्रि०) लीनहो.

पंचाग्नि तपना, भभूतलगाना, नखकेश बढ़ाना आदि खोटा तप सब मिथ्याचारित्र है इसको छोड़ो. हे दौलतराम ! अब तू ऐसे मार्गमें चल जिसमें आत्माका हितहो, जगत्के जंजालमें घूमनेका त्याग कर और अपने आत्मामें लीनहो ।

दूसरी ढालका भावार्थ ।

संसारकी चारोंगतियोंमें घुमानेवाले दुखदाई ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्रहैं ।

यह तीनों दो भेदरूपहैं एक अगृहीत दूसरा गृहीत. अगृहीत जो पहलेसेही साथ चलाआयाहो, गृहीत जो इस भवमें ग्रहण कियाहो ।

आत्मा और शरीरको एक निश्चय करना सो मिथ्यादर्शन, इनका भेद न समझना सो मिथ्याज्ञान, दिनरात खाने पीने और विषयोंमें मन लगाना सो मिथ्याचारित्रहै–यह अगृहीतका स्वरूपहै ।

कुगुरु कुदेव कुधर्मको सच्चा मानना सो मिथ्यादर्शन, संसार बढ़ानेवाले खोटे शास्त्रोंका पढ़ना सो मिथ्याज्ञान, ज्ञान विना देहको नाशकरनेवाले हिंसामई तपकरना सो मिथ्या चारित्रहै । यह गृहीतका स्वरूपहै इन तीनोंको छोड़कर आत्माका भला करना चाहिये ।

तृतीय ढाल ।

नरेन्द्रछंद २८ मात्रा (जोगीरासाके समान)

आतमको हितहै सुख सो सुख, आकुलता विन कहिये ।
आकुलता शिवमांहि न तातैं; शिव मग लाग्यो चहिये ॥

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो दुविधि विचारो।
जो सत्यारथ रूपसो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥ १॥

शिव=(सं०) मोक्ष. मग=(सं०) मार्ग.

आत्माका भला, सुख पानाहै-और सुख उसे कहते हैं जिसमें आकुलता अर्थात कोई तरहकी चिन्ता नहीं, सो आकुलता एक मोक्षमें नहीं है (संसारमें तो सबही जगहहै) इसलिये सुखके चाहनेवालोंको मोक्षके मार्गपर चलना चाहिये मोक्षका रास्ता सम्यक् दर्शन ज्ञान और सम्यक् चारित्रहै । यह तीनों दोतरहके विचार करना चाहिये । एक तो निश्चयरूप जो कि ठीक सच्चा २ स्वरूपहै दूसरा व्यवहार जो निश्चयरूपके पानेको कारणहै ॥

परद्रव्यनतें भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भलाहै ।
आप रूपको ज्ञानपनो सो, सम्यक् ज्ञान कलाहै ॥
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यक् चारित सोई ।
अब विवहार मोष मग सुनियें, हेतु नियतको होई ॥२॥

रुचि=(सं०) श्रद्धा, यकीन, गाढ़निश्चय. नियत=(सं०) निश्चय.

पर अर्थात् दूसरे द्रव्योंसे आत्माको जुदा जान आत्मामें रुचि रखना सो निश्चय सम्यक् दर्शनहै; अपने आत्माके स्वरूपका विशेप ज्ञान करना सो निश्चय सम्यक् ज्ञानहै, अपने आत्माके स्वरूप में एकचित्तहो लीन अथवा तन्मय होजाना सो निश्चय सम्यक् चारित्रहै, अब आगे निश्चय मोक्षमार्गके प्राप्तकरनेका कारण ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग कहतेहैं ॥

जीव[१] अजीव[२] तत्व अरु आश्रव[३], बंध[४] रु संवर[५] जानो ।
निर्जर[६] मोक्ष[७] कहे जिन तिनको, ज्योंको त्यों सरधानो ॥

है सोई समकित विवहारी, अव इनरूप वखानो ।
तिनको सुन सामान्य विशेपै, दृढ़प्रतीति उर आनो॥३॥

सामान्य=(वि०) कोई वस्तुका साधारण स्वरूप कहदेना.
विशेप=(वि.) उसी वस्तुका अधिक गुण, कार्यादि कहना.

जीव, अजीव, आश्रव, वंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष इन सातों तत्त्वोंका स्वरूप जैसा जिनेन्द्र भगवानने कहाहै वैसाही श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यक्दर्शनहै, सातों तत्वोंका सामान्य और विशेप स्वरूप आगे कहतेहैं सो तिनको समझ मनमें लाओ ॥

वहिरातम अन्तरआतम पर, मातम जीव त्रिधाहै ।
देह जीवको एक गिने वहि;-रातम तत्त्व मुधाहै ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविधि संग विन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी

त्रिधा=(वि०) तीनतरह के:
मुधा=(वि०) मूर्ख. द्विविधि संग=(सं०) दोप्रकारका परिग्रह १४ तरहका अंतरंग, १० तरहका वहिरंग। १ मिथ्यात. २ वेद (स्त्री, पुरुप, नपुंसक) ३ राग, ४ द्वेप, ५ हास्य (हँसी), ६ रति (मनलगना) ७ अरति, (मन न-लगना), ८ शोक, ९ भय, १० जुगुप्सा, (ग्लानि) ११ क्रोध (गुस्सा) १२ मान, (घमंड), १३ माया, (दगाबाजी), १४ लोभ, ये १४ चौदह अंतरंगहैं । १ क्षेत्र (खेत) २ वास्तु (मकान) ३ हिरण्य, (चांदी), ४ सुवर्ण, (सोना) ५ धन (गायभैंसादि) ६ धान्य (अन्नादि) ७ दासी, ८ दास, ९ कुप्य, (कपड़ा), १० भाण्ड, (वर्तन) ये १० तरहका वहिरंग परिग्रहहैं ॥

जीव तीनतरहके होतेहैं १ वहिरातम २ अंतरातम ३ परमातम, । जो शरीर और आत्माको एक गिने वे तत्त्वोंसे अजान वहिरात्मा (मिथ्यादृष्टी) जीवहैं जो आत्माको जानतेहैं वे अंतरात्मा (सम्यक्-

दृष्टी) जीवहै सो तीनतरहके होतेहैं उत्तम, मध्यम, जघन्य, जो २४ तरहकी परिग्रह रहित शुद्ध परिणामी अपने आत्माके ध्यानी मुनिहैं ये उत्तम हैं ।

मध्यम अन्तर आतमहैं जे, देशव्रती आगारी ।
जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिवमग चारी ॥
सकल निकल परमातम द्वैविधि, तिनमें घाति निवारी ।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥५॥

देशव्रती=(वि०) १२ व्रतपालनेवाले श्रावक, जिनका वर्णन चौथी ढालमेंहै
आगारी=(सं०) गृहस्थी श्रावक.
अविरत=(वि०) १२ व्रत नियमसे नहींपालनेवाले, सकल=(वि०) शरीर-सहित निकल=(वि०) देहरहित, घातिनिवारी=(वि०) ज्ञानावरणी, जो ज्ञानको रोके दर्शनावरणी (जो दर्शनको रोके) अंतराय (जो विघ्न करे) मोहनी (जो मोह पैदाकरे) यह ४ घातियाकर्म आत्माके स्वभावको घात-करनेवालेहैं तिनको नाशकनेरवाले, निहारी=(वि०) देखनेवाले.

मध्यम अंतरात्मा देशव्रती गृहस्थहैं, जघन्य व्रतरहित सम्यक्दृष्टीहैं, यह तीनोही अंतरात्मा मोक्षमार्गमें चलनेवालेहैं। परमात्मा दो तरहकेहैं एक सकलपरमात्मा दूसरे निकलपरमात्मा, जिन्होंने ४ घातिया कर्म नाश किये, जो लोक और अलोक देखनेवालेहैं ऐसे श्रीअरहंत भगवान् शरीरसहित सकलपरमात्माहैं(जैसे कि समोशरण व गंधकुटीमें विराजेहैं)।

ज्ञानशरीरी त्रिविधकर्ममल, वर्जित सिद्ध महंता ।
तेहैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै ।
परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनँद पूजै ॥ ६ ॥

त्रिविधकर्म=(सं०) तीनप्रकार कर्म. १ द्रव्यकर्म जो ८ हैं ४ तो घातिया जो ऊपर कह आए, ४ अघातिया जैसे १ आयु (जिससे उस भवके भीतर रहना होताहै) २ नाम (जो शरीरके अंगोपांग बनाताहै)

३ गोत्र (जिससे ऊंच नीच कुलमें जन्महो) ४ वेदनी (जो दुःख सुख देताहै), २ भावकर्म जैसे रागद्वेषक्रोधादि; ३ नो कर्म सो ३ तरहकेहैं, औदारिक जैसे मनुष्य और पशुओंके देह, २ वैक्रियक जैसे देवनारकियोंके देह, ३ आहारक यह ऋद्धि धारी मुनिके मस्तकसे निकलताहै और केवली श्रुत केवलीको स्पर्शकर मुनिकी शंकाको दूर करताहै ।
वर्जित=(वि०) रहित. हेय=(वि०) छोड़नेलायक.

ज्ञानहीहै शरीर जिनके, जो तीन प्रकार कर्ममलसे रहितहैं, ऐसे महान्‌सिद्धभगवान्‌ निर्मल जड़शरीररहित निकल परमात्माहैं जो अनन्तकालतक सुखभोगते रहतेहैं । हे भाई ! वहिरातमपनेको त्यागने योग्य जानकर छोड़दे और अंतरातमा होकर सदा दोनोंप्रकारके परमात्माकी सेवा करजिससे तुझे निरन्तर आनन्दकी प्राप्ति हो ॥

चेतनता बिन सो अजीवहै, पँच भेद ताकेहैं ।
पुद्गल पंचवरण रस गंध दो, फरसवसू जाकेहैं ॥
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी ।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई. जिन विन मूर्ति निरूपी ॥७॥

पुद्गल=(सं०) जो पूरे गले अर्थात् जिसके परमाणु मिलजाँय और विछुड़जायँ इसमें २० गुण होतेहै ।
पंचवरण=(सं) पाँच रंग (हरा, लाल, काला, पीला, सफेद)
पंचरस=(सं०) रूप पांचरस (खट्टा, मीठा, चरचरा, कड़वा, कषायला)
दोगंध=(सं०) दोतरह गंध (सुगन्ध, दुर्गन्ध)
वसुफरस=(सं०) आठतरह स्पर्श (गर्म, ठंढा, हलका, भारी, कोमल, कठोर, रूखा, चिकना)
तिष्ठत=(क्रि०) ठहरतेहुए, निरूपी=(क्रि०) कहीहै ।

अजीवतत्व वह है जिसके चेतनता अर्थात् जानने देखनेकी शक्ति नहीं हो यह पांचप्रकारका है । पहलाभेद पुद्गल द्रव्य है जिसके पाँचरंग

पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श ऐसे २० गुण होते हैं, दूसरा भेद धर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलको जब ये दोनों अपनी शक्तिसे चलते हैं तब चलनेमें सहाय करता है, तथा मूर्ति रहित है तीसरा भेद अधर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलको जब वे अपने आप ठहरते हैं तब उनके ठहरनेमें सहाय करता है, इस द्रव्यको भी जिनेन्द्र भगवान्ने अमूर्तीक कहा है॥

सकलद्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशिदिन सो व्यो, हार काल परिमानो॥
यों अजीव अब आश्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय पर, माद सहित उपयोगा॥८

चौथा भेद आकाश द्रव्य है, जिसके भीतर सब द्रव्य रहतेहैं (तीनों-लोक आकाशके भीतरहैं) पाँचवाँ भेद कालद्रव्य है यह दो प्रकारका है। एकनियत अर्थात् निश्चय जिसका स्वरूप सब द्रव्योंको वर्तन होनेमें सहाय करनेकाहै दूसरा व्यवहारकाल जो रातदिन घड़ी-पहर मिनटके नामसे मानाजाताहै, ऐसे पांचतरहके अजीवहैं (इनमें जीवद्रव्य मिलानेसे छःद्रव्य कहलातेहैं), तीसरातत्त्व आश्रवहै इसका हाल सुनिये कर्मोंका आत्माके पास आना व जिसके कारणसे आना सो आश्रवहै, मन, वचन, काय इन तीनोंका हलना सो योग है इसीसे कर्मका आश्रव होताहै मिथ्यादर्शन, अविरत (व्रत न पालना) कषाय (क्रोधादि) परमाद (आलस) इन सहित जो उपयोग अर्थात् आत्माके भाव हैं सो॥

येही आतमको दुखकारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे विधिसों सो, बंधन कबहुँ न सजिये॥
शम दमतें जो कर्म न आवै, सो संवर आदरिये।
तप बलतें विधि झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये॥९॥

विधि=(सं०) आठों कर्म, न सजिये=(क्रि०) नहीं कीजिये.

शम=(सं०) शांति, कषायोंको कमकरना, दम=(सं०) इन्द्री और मनको वशमें रखना।

तप=(सं०) इच्छाओंको रोककर ध्यान करना।

यही भाव आत्माको दुःखके करनेवालेहैं इसलिये इनको छोड़ना चाहिये। इन्हीं भावोंके कारणसे जीवके प्रदेश (स्थान) कर्मोंसे बँध जाते हैं (यही चौथे बंध तत्वका सरूपहै) सो ऐसा बंधन (हेभाई) कभी नहीं कीजिये॥ शम और दमसे आतेहुए कर्म रुकतेहैं यह पाँचवें संवरतत्त्वका स्वरूप है सो इसका आदर कीजिये। तपके जोरसे कर्मोंका झरना अर्थात् आत्मासे अलग होना सो छठे निर्जरातत्वका स्वरूपहै इस तत्त्वको सदा काममें लाइये॥

सकलकर्मतें रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इहिविधि जो सरधा तत्वनकी, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र गुरू परिग्रह विन, धर्म दयायुत सारो।
यहू मान समकितको कारण, अष्ट अंग जुत धारो॥१०॥

सकल=(वि०) सर्व. शिव=(सं०) मोक्ष.
अवस्था=(सं०) दशा हालत.

सर्व (आठों)कर्मोंके छूटनेपर जो आत्माकी दशा सो मोक्ष है, जो सदा थिर अर्थात् एकरूप और सुखदाई है यह सातवें मोक्ष तत्त्वका स्वरूपहै; इसतरह जो सातों तत्त्वोंकी श्रद्धा करना सो व्यवहार सम्यक्-दर्शन है। श्रीजिनेन्द्र अरहंत भगवान तो देव, २४ प्रकार परिग्रहरहित गुरु, और दयामयी धर्म यह तीनोंभी सम्यक्दर्शनके कारणहैं. इस सम्यक्तको आठ अंगसहित धारण करो।

बसुमद टारि निवारि त्रिशठता, षट अनायतन त्यागो।
शंकादिक बसु दोष विना सं,-वेगादिक चित पागो॥
अष्टअंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपै कहिये।
बिन जाने तें दोष गुननको, कैसे तजिये गहिये॥११॥

वसुमद=(सं०) आठ घमंड. निवारि=(क्रि०) दूरकर.
त्रिशठता=(सं०) तीन मूढ़ता. षट्अनायतन=छः अधर्मके स्थान.
संवेगादि=(सं०) पांच इन्द्री और मनको वश करना आदि.

आठ मद, तीन मूढ़ता, छः अनायतन और शंका आदि आठदोष ऐसे २५ दोषोंको दूर कर संवेगादि गुणोंको चित्तमें प्यार करो. ८ अंग २५ दोष का स्वरूप संक्षेपसे कहते हैं क्योंकि दोष और गुण दोनोंको जानेबिना कैसे कोई दोषोंको छोड़े और गुणोंको ग्रहण करे।

जिन वचमें शंका न धार वृष, भवसुख वांछा भानै।
मुनितन देख मलिन न घिनावै, तत्त्वकुतत्त्व पिछानै॥
निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निजधर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतें चिगते, निज परको सु दिढ़ावै॥१२॥

वृष=(सं०) धर्म. भानै=(क्रि०) नाश करै.
चिगते=(क्रि०) गिरतेहुए. दिढ़ावै=(क्रि०) स्थिर करै.
घिनावै=(क्रि०) बुरासमझै.

अब आठअंगका स्वरूप कहना शुरू करतेहैं—

१ जिन भगवान्‌के कहे वचनोंमें संशय न करना सो निशंकित अंगहै।
२ धर्मसेय करके संसारके सुखोंकी इच्छा न करनी सो निकांक्षित अंगहै।
३ मुनिमहाराजके व अन्य धर्मात्माके शरीरको मैला देखकर घृणा न करनी सो निर्विचिकित्सा अंगहै।
४ खोटे खरे तत्त्वकी पहचानकर मूढ़ताकी तरफ नहीं जाना सो निर्मूढ़ता अंगहै।
५ अपने गुण और परके दोष छिपावे वा अपना धर्म अधिक करै सो उपगूहन अंगहै।
६ कामआदि कोई कारणके वशसे धर्मसे चित्त गिरता हो तो उस समय जिस तरह बने अपनेको व दूसरेको धर्ममें मजबूत करना सो स्थितीकरण अंगहै.

धर्मीसो गौ बच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावै।
इन गुणतैं विपरीति दोष वसु, तिनको सतत खिपावै।
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धनबलको मद भानै॥१३॥

दिपावै=(क्रि०) उन्नतिकरै, चमकावै. सतत=(क्रि०वि०) निरन्तर, हमेशा.
विपरीति=(वि०) उल्टे. खिपावै=(क्रि०) दूर करै।
मातुल=(सं०) मामा. नृप=(सं०) राजा.

७ जैसे गाय अपने बचेसे प्रीति करतीहै ऐसा प्यार धर्मात्मासे करना सो वात्सल्याङ्ग है।

८ जैनधर्मको जिसतरह बने उन्नति देना, बढ़ाना सो प्रभावनांगहै। ये ८ सम्यक्तके अंगहैं इन गुणोंसे उलटे शंकादि आठ दोषहैं, जो २५ दोषोंमें गर्भितहैं; तिनको सदा दूर करै अब आठ मद कहतेहैं–१ कुलमद–अपना पिता राजाहो उसका घमंड करना, २ जातिमद–अपना मामा राजाहो उसका घमंड करना, ३ रूपमद–अपना शरीर सुन्दरहो उसका घमंड करना, ४ ज्ञानमद–आप ज्ञानवान् होकर घमंड करना, ५ धनमद–अपने पास रुपया अधिकहो उसका घमंड करना, ६ बलमद–आप बलवान् होकर अपनी ताकतका घमंड करना। ऐसे छः मदोंको नहीं करना चाहिये।

तपको मद, मद न प्रभुताको, करे न सो निज जानै।
मदधारै तो यही दोष बसु, समकितको मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवककी, नहिं प्रशंस उचरैहै।
जिन मुनि जिन श्रुति बिन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करैहै

प्रभुता=(सं०) बड़प्पन, ऐश्वर्य. उचरैहै=(क्रि०) कहे है.

७ तपमद–आप तपस्या बहुत करताहो उसका घमंड करना,

८ प्रभुतामद्-अपनी आज्ञा (हुकुम) बहुत चलतीहो उसका घमंड करना।

अपने आत्मको इनसे अलग जानकर ये आठ मद नहीं करना चाहिये, यदि घमंड करै तो यही आठ दोष सम्यक्त मैला करतेहैं। अब छः अनायतन कहतेहैं-खोटे गुरु, खोटे देव और खोटे धर्म और इन तीनोंके सेवक ऐसे छः धर्मके आयतन नहीं हैं। इनकी प्रशंसा नहीं करना चाहिये, (करै तो यही छः दोष होजाँयगे) अब तीन मूढ़ता कहतेहैं-जिन भगवान् अरहंत, निर्ग्रन्थमुनि, और अरहंतका कहाहुआ शास्त्र इनके सिवाय रागीदेव, पाखंडीगुरु, खोटे शास्त्र और धर्म हैं तिनको सम्यक्ती मूर्खतासे नमस्कार नहीं करताहै जो नमन करै तो यही तीन दोष हैं॥ यह २५ दोष पूर्णहुए॥

दोष रहित गुणसहित सुधी जे, सम्यकदर्श सजे हैं।
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजेहैं॥
गेहीपै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमलहै।
नगरनारिको प्यार यथा कांदे में हेम अमल है॥१५॥

सुधी=(वि०) बुद्धिमान्. सुरनाथ=(सं०) इन्द्र.
लेश=(वि०) थोड़ाभी. जजेहैं=(सं०) पूजन करेहैं.
संजम=(सं०) व्रत उपवास. गेही=(सं०) गृहस्थी.
नगरनारि=(सं०) वेश्या. कांदे=(सं०) कीचड़.
हेम=(सं०)सोना. सजेहैं=(क्रि०) शोभायमानहै.

जो बुद्धिमान २५ दोष दूरकर और आठगुण धारणकर सम्यक्दर्शनसे शोभायमानहैं वे चाहे चारित्रमोहनी कर्मके आधीन होनेसे व्रत उपवास थोड़ाभी न करसकें तौभी उन सम्यग्दृष्टियोंकी इन्द्र पूजा करतेहैं। यद्यपि वे गृहस्थीहैं परन्तु घरमें रचते अर्थात् लीन नहीं होते, जैसे जलके भीतर रहनेवाला कमल जलसे अलग रहताहै इसतरह रहतेहैं.

घरसे उनकी प्रीति वेश्याकी प्रीतिके समान होतीहै जो कि कभी टिकनेवाली नहीं है जैसे कीचड़में पड़ाहुआ सोना निर्मलही रहताहै ऐसे गृहस्थी निर्मलही रहते हैं।

प्रथम नरक विन षटभू ज्योतिष, वान भवन सब नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी॥
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शनसो सुखकारी।
सकल धरमको मूल यही इस, विनकरणी दुखकारी॥१६॥

षटभू=(सं०) छः पृथ्वी (नरक) वान=(सं०) व्यन्तर.
करणी=(सं०) सर्व-धर्मकर्म.

सम्यक्दर्शनका धारी जीव इतनी जगह मरकर नहीं जाता। पहले नरक विना छः नरकोंमें, ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी देवोंमें, सब-तरहकी स्त्रियोंमें, थावर एकेन्द्रियोंमें, द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय ऐसे, विकलत्रय पशुओंमें। तीनलोक और तीनों कालमें सम्यक्दर्शनके समान कोई भी सुखकारी नहीं है सर्वधर्मकी जड़ यहीहै, इसके विना जितनी क्रियाएँ हैं सब दुखकारी हैं।

मोक्षमहलकी प्रथम सीढ़ी, याविन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, कालवृथा गत खोवै।
यह नर भव फिर मिलन कठिनहै, जो सम्यक् नहिं होवै॥

सम्यक्ता=(सं०) सत्यपना. पवित्रा=(वि०) निर्मल.
सयाने=(सं०)चतुर.

यह सम्यक्दर्शन मोक्षरूपी महलमें चढ़नेकी पहली सीढ़ीहै, इसके विना ज्ञान और चरित्र सम्यक्पने अर्थात् सत्यपनेको प्राप्त नहीं होते हे भव्यजनों! ऐसे पवित्र सम्यक्दर्शनको धारणकरो। हे दौलतराम! समझ, सुन, चेत, यदि तू सयानाहै तो वेमतलब समय न खो जो इस जन्ममें सम्यक् दर्शन नहीं मिला तो फिरसे ऐसे उत्तम मनुष्य जन्मका मिलना बहुत दुर्लभहै॥

(वि०) निर्म

तीसरी ढालका भावार्थ।

सुख ज्ञान=(ण निराकुलताहै, उसका उपाय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रहै। यह तीनों दों भेदरूपहैं निश्चय और व्यवहार॥ व्यवहार निश्चयका कारणहै आत्मका निश्चय ज्ञान और उसमें लीनहोना सो निश्चय सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्रहै। जीव आदि सात तत्त्वोंका ठीक २ श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यक्दर्शनहै तथा सचेदेव, गुरु और धर्मका सरधान करना सो व्यवहार सम्यक्दर्शनका कारणहै। सम्यक्दर्शनमें आठ दोष, आठ मद, छः अनायतन, तीन मूढ़ता ऐसे २५ दोष नहीं लगाकर निर्मल पालना चाहिये। सम्यक्दर्शन धर्मरूपी वृक्षकी जड़है अथवा धर्मरूपी घरकी नीवहै इसलिये सबसे पहले मनुष्यको यह धारण करना चाहिये इसके विना सर्व धर्म क्रियाएँ अतिशयरूप पुण्य नहीं पैदा करतीं मनुष्यजन्म और उत्तम कुल पाकर यदि फिरभी सम्यक्दर्शन नहीं धारण किया तो यही समझना चाहिये कि, बड़ाभारी अवसर चूका क्योंकि ऐसा उत्तम नर भव वार २ नहीं आता सम्यक्दर्शनकी ऐसी महिमाहै कि, मरकर उत्तम देव मनुष्य ही होताहै, स्त्रियोंमें पैदा नहीं होता, नरकभी जाय तो पहले नरकसे नीचे नहीं जाता हे भव्यजीवो! जिस तरह वने शास्त्रस्वाध्याय कर अथवा सत्संगति करके साततत्त्वोंका स्वरूप समझ निश्चय करो और सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे अपने आत्माको पवित्र करो॥

इति।

अथ चतुर्थढाल।

दोहा।

सम्यक श्रद्धा धार पुनि, सेवहु सम्यक ज्ञान।
स्वपर अर्थ वहु धर्मयुत, जो प्रगटावन भान॥

सम्यक्दर्शनको धारके फिर सम्यक्ज्ञानकी सेवा करो, यह सम्यक्ज्ञान

आत्मा और अन्य, पदार्थोंके वहुतसे धर्म अथेरीहै जो कि कभी पैलही रहताहै करनेके लिये सूर्य्यके समानहै।

रोलाछन्द २४ मात्रा।

सम्यक साथे ज्ञान, होयपै भिन्न अराधो।
लक्षण श्रद्धा जान, दूहूमें भेद अवाधो॥
सम्यक कारण जान, ज्ञान कारजहै सोई।
युगपत होतेभी, प्रकाश दीपकतें होई॥ १॥

अराधो=(क्रि०) विचारकरो. अवाधो=(वि०) वाधारहित, निर्विघ्न.
युगपत्=(क्रि०वि०) एकही समयमें.

सम्यग्दर्शनके साथही जो ज्ञान होताहै वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है परन्तु दोनोंको अलग २ विचारना चाहिये क्योंकि लक्षणमें भेद है सम्यक्तका लक्षण श्रद्धान करना, प्रतीति करनाहै. जब कि सम्यग्ज्ञानका लक्षण ठीक २ जाननाहै; इस भेदहोनेपरभी कोई बाधा नहीं आतीहै क्योंकि सम्यग्दर्शन कारणहै और सम्यग्ज्ञान कार्य है। यद्यपि एकही समयमें होतेहैं तौ भी इतनाही भेदहै जैसे दीपक जलनेसे प्रकाश होता है, दीपक प्रकाश होनेका कारण है विना सम्यक्त अर्थात् सच्चीश्रद्धा पैदाहुए ज्ञानको सम्यग्ज्ञान नहीं कहसक्ते॥

तास भेद दोहैं परोक्ष, परतक्ष तिन माहीं।
मतिश्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं॥
अवधि ज्ञान मन पर्य्यय, दोहैं देश प्रत्यक्षा।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण, लिये जानै जिय स्वच्छा॥ २॥

परोक्ष=(वि०) जो आत्मा स्वयं न देखसके परन्तु इन्द्री और मनकी सहायसे देखे है।
प्रत्यक्ष=(वि०) जो आत्मा स्वयं देखसके।
अक्ष=(सं०) इन्द्री पाँच, देश=(वि०) थोड़ा।

स्वच्छा=(वि०) निर्मल, अवधिज्ञान=(सं०) जिसज्ञानसे पूर्वभव जाने जाय.
मनपर्ययज्ञान=(सं०) जिसज्ञानसे दूसरेके मनकी सूक्ष्मवात जानीजाय.

सम्यग्ज्ञानके दो भेद हैं एक परोक्ष, दूसरा प्रत्यक्ष। तिनमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो परोक्ष हैं क्योंकि ये पांच इन्द्रिय और मनकी सहायसे पैदा होवेहैं; अवधिज्ञान और मनपर्ययज्ञान थोड़े प्रत्यक्षहैं क्योंकि निर्मल आत्मा इनसे रूपी द्रव्य और थोड़े क्षेत्रकी बातको जानताहै।

सकल द्रव्यके गुण, अनंत पर्याय अनंता।
जानैं एकैकाल, प्रगट केवल भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारण।
इहि परमामृत जन्म, जरामृत रोग निवारण॥३॥

आन=(वि०) दूसरा. परमामृत=(सं०) उत्तम अमृत।
जन्म जरामृत=(सं०) जन्मना, बुढ़ापा और मरना।

पाँचवाँ सम्यक् ज्ञान केवलज्ञानहै, जो सबतरह प्रत्यक्षहै जिसके कारण केवली भगवान् एकही समयमें सब द्रव्योंके, अनंत गुणोंको और उनकी अनंत अवस्थाओंको प्रगटरूपसे (जैसे हथैलीमें रक्खे आंवलेको) जानतेहैं॥ इस जगत्में जीवोंको सुख देनेवाला ज्ञानके बराबर दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। यह ज्ञानही उत्तम अमृतके समान है। इस ज्ञानामृतके पीनेसे ही जन्म, जरा और मरण जो ये तीन भयानक रोगहैं सो दूर होजाते हैं॥

कोटिजन्म तप तपैं, ज्ञान विन कर्मझरैं जे।
ज्ञानीके छिनमें त्रि,-गुप्तितैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार अनंत, वार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान, विना सुखलेश न पायो॥४॥

कोटि=(वि०) करोड़ों. त्रिगुप्ति=(सं०) मन वचन कायका रोकना.
ग्रीवक=(सं०) १६ स्वर्गके ऊपर ९ ग्रीवक विमानहैं यहांतक मिथ्यादृष्टि जा सक्ताहै ।

ज्ञानके बिना अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मोंमें तप करके जितने कर्मोंको दूर करताहै उतने कर्मोंको ज्ञानी जीव एक क्षणभरमें अपने मन, वचन, कायको रोकनेसे सहजमें नाश करदेताहै । जिस जीवने अनंतवार मुनिव्रत धारण किये और ग्रीवक विमानोंतकमेंभी गया परन्तु उसने अपने आत्माके ज्ञानबिना जराभी सुख प्राप्त नहीं किया ।

तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै ।
संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लख लीजै ॥
यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनवो जिन वानी ।
इहिविधि गए न मिलैं, सुमणि ज्यों उदधि समानी ५

कथित=(क्रि०) कहाहुआ, अभ्यास करीजै=(क्रि०) पढ़िये.
संशय=(सं०) शंका करनी जैसे कि यह चांदीहै कि सीपहै.
विभ्रम= (सं०) उल्टा मानलेना जैसे सीपको चांदी समझना.
मोह=(सं०) कुछ जाननेकी परवाह न करना, जैसे मार्गमें जाते पगमें तिनका लगै तो कुछ जाननेका उद्यम न करके यह विचार लेना कि कुछ होगा ॥
सुमणि=(सं०) सुन्दर रतन, उदधि=(सं०) समुद्र.
समानी=(क्रि०) समाजाय, गिरजाय ॥

इसलिये जिनेन्द्र भगवानके कहेहुए तत्त्वों अर्थात् शास्त्रोंको पढ़नाचाहिये और संशय विभ्रम और विमोह इन तीनों दोषोंको छोड़कर आत्माको पहचानना चाहिये । यह नरभव, उत्तमकुल तथा जिनवाणीका सुनना जो इस समय मिलाहै (यदि आत्मज्ञान पैदा कियेविना) इसी तरह बीत गए तो फिर इनका मिलना ऐसा ही कठिनहै जैसे एक रतन समुद्रके भीतर गिर पड़े तो मिलना मुश्किल है ।

धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप, भये फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञानको कारण, स्वपर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो॥ ६॥

समाज=(सं०) लोगोंका समूह, बाज=(सं०) घोड़ा।

धन, समाज, हाथी, घोड़ा, राज्य कोई अपने आत्माके काम नहीं आताहै। ज्ञान जो आत्माका स्वरूपहै उसी ज्ञानके होनेसे आत्मा निश्चल रहताहै अर्थात् केवल ज्ञान अवस्था पाय सुखीहो एकरूप रहताहै तिस आत्मज्ञानका कारण अपने और पराएका विवेक अर्थात् विचारकरना कहागयाहै। सो हे भव्य करोड़ों तदबीर कर जिसतरह बने उस विवेकको अपने चित्तमें लाओ।

जे पूरब शिव गए, जाहिं अब आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञान, तणी मुनिनाथ कहेहैं॥
विषय चाह दवदाह, जगत जन अरण दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान-घनघान बुझावै॥ ७॥

दवदाह=(सं०) अग्निका जलना. अरण=(सं०) वन।
दझावै=(क्रि०) जलाताहै, घनघान=(सं०) मेघसमूह।

जितने पहले मोक्षगए, अब जातेहैं और आगे जायँगे उन सबके लिये ज्ञानका प्रभावही कारण जानना चाहिये ऐसा मुनियोंके नाथ जिनेन्द्र भगवान् कहतेहैं। पंचेन्द्रियोंके विषयोंकी चाहना यही एक आग जलतीहै, जगत्के लोग वनके समानहैं तिनको यह आग जलारहीहै। ऐसी आगके ठण्डा करने का उपाय सिवाय ज्ञानरूपी मेघोंकी वर्षाके दूसरा नहीं है॥ अर्थात् ज्ञानके द्वारा विचार करनेहीसे विषयोंकी चाहनाएँ दूर होतीहैं।

पुण्य पाप फल माँहि, हरष विलखो मतभाई।
यह पुद्गल पर्याय, उपज विनसै फिर थाई॥

लाख बातकी बात, यही निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जगधंध, फंद नित आतम ध्याओ॥८॥

विलखो=(क्रि०) शोककरना. थाई=(वि०) पैदा होनेवाली.

हे भाई! पुण्यका फल धनादिक तिसको देखकर खुशी मतहो तथा पापका फल रोगवियोग आदि तिसेभी जानकर शोक मतकर। क्योंकि यह पाप पुण्य पुद्गलरूप जो कर्म तिनकी अवस्थाएं हैं। जो पैदा होकर नाश हो जातीहैं और फिर पैदाहोतीहैं। लाख बातकी बात यही संक्षेपसे कही जातीहै सो तुम अपने मनमें निश्चय लाओ, वह बात यह है सब जगत्के धंधोंके फंदे तोड़कर नित्य आत्माका ध्यान करो। (यहां मतलब यहहै कि, जितना बने संसारसे राग कम करै आत्मासे प्रीति करो। यह प्रयोजन नहीं है कि, गृहस्थीमें रहकर कार्य व्यवहार कम करके आलसी होजाओ किन्तु न्यायपूर्वक उद्यम करो जितना समय आत्म विचारके लिये बचा सको उतना अच्छाहै)।

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकल, देश तसु भेद कहीजै॥
त्रसहिंसाको त्याग, वृथा थावर न संघारै।
पर बधकार कठोर, निन्द्य नहिं वयन उचारै॥९॥

बहुरि=(सं० अ०) फिर, संघारै=(क्रि०) नाश करै.
परबधकार=(वि०) दूसरेके प्राणलेनेवाले।

सम्यग्ज्ञानी होकर फिर मजबूतीसे सम्यक्चारित्रको पालना चाहिये। इस चारित्रके दोभेदहैं। एक सकल, दूसरा एकदेश, (सकल चारित्र मुनि पालतेहैं जिसका वर्णन आगेकी ढालमें है। यहां अब देशचारित्रका वर्णन करतेहैं जो श्रावक पालतेहैं। श्रावकोंके १२ व्रत होतेहैं, सो क्रमसे कहतेहैं)

त्रसजीवोंकी हिंसा त्यागकर बेमतलब थावर जीवोंको भी नहीं नाश करना सो पहला अहिंसा अणुव्रतहै, दूसरेके प्राणनाशक, कठोर, निन्दायोग्य जो झूठे और खोटे वचन हैं तिनको न कहना सो दूसरा सत्य अणुव्रत है।

जलमृतिका विन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निजवनिता विन और, नारिसों रहै विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दसदिश गमन प्रमाण, ठान तसु सीम न नाखै॥

मृत्तिका=(सं०) मट्टी.
वनिता=(सं) स्त्री.
सीम=(सं०) मर्यादा, हद्द.
प्रमाण=(सं०) गिनती.
अदत्ता=(वि०) विनादिये हुए.
विरत्ता=(वि०) उदास.
नाखै=(क्रि०) तोड़े.

जल और मट्टीके विना दूसरी कोई चीज दूसरेकी विना दीहुई न लेना सो तीसरा अचौर्य्य अणुव्रतहै। अपनी विवाहिता स्त्रीके सिवाय और स्त्रियोंसे उदास रहना सो चौथा स्वस्त्रीसन्तोष अणुव्रतहै। अपनी ताकतका खयालकर जन्मभरके लिये धन धरती मकान आदि परिग्रहका थोड़ा प्रमाणकर लेना कि इससे अधिक न रक्खेंगे सो पाँचवा परिग्रह-प्रमाण अणुव्रतहै। (यह पाँच अणुव्रत हुए)॥ जन्मभरकेलिये दश-दिशाओंमें जानेका प्रमाण बांधकर फिर उस मर्यादाको नहीं तोड़ना सो दिग्व्रत नाम पहला गुणव्रतहै।

ताहूमें फिर ग्राम, गली ग्रह वाग वजारा।
गमनागमन प्रमाण, ठान अन सकल निवारा॥
काहूकी धनहानि, किसी जयहार न चिंतै।
देयन सो उपदेश, होय अघ वनज कृषीतैं॥११॥

१ जबतक आरम्भका त्याग गृहस्थी न करै तबतक उसके व्यापारादिके आरम्भमें त्रसहिंसाका सर्वथा त्याग नहीहै क्योंकि काम तो हरजगह करेगा।

ग्राम=(सं०) गाँव. गमनागमन (वि०) जाने आनेका
अघ=(सं०) पाप. कृषी=(सं०) खेती.

तिस जन्मपर्यंतकी दशदिशाओंकी मर्यादामें भी एकदिन, पांचदिन, १० दिन ऐसे थोड़े २ समयके लिये कोई गाँव, कोई गली, कोई घर, कोई बाग, व कोई बाजारतक जाने आनेकी मर्यादा बाँधना और उसके सिवाय दूसरे स्थानोंको दिलसे दूर करना सो दूसरा देशव्रत नामा गुणव्रतहै। (अब तीसरागुणव्रत जो अनर्थदंडहै उसके पांच भेद कहतेहैं) कोई दूसरेके धनका नाश हो, किसीकी जीतहो, किसीकी हारहो ऐसा विचार करना सो पहिला अपध्यान नामा अनर्थ दंडहै सो न करना; ऐसा उपदेश व्यापार व खेतीकरनेका दूसरेको देना जिससे पापका प्रचार हो सो पापोपदेश नामा दूसरा अनर्थ दंडहै सो न करना ॥

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ।
असि धनु हल हिंसोप, करण नहिं दे यश लाधै ॥
राग द्वेष करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै ।
औरहु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्है न कीजै ॥१२॥

पावक=(सं०) अग्नि. विराधै=(क्रि०) नाशकरै.
हिंसोपकरण=(सं०) ऐसे हथियार व वस्तु जिससे हिंसाहो जैसे बूसदान बरछा तलवार आदि.
लाधै=(क्रि०) लूटै.

आलसकरके बेमतलब, पानी मुंधाना, जमीन खोदना, झाड़काटना, आग जलाना व बुझाना यह प्रमादचर्या नाम तीसरा अनर्थदंडहै सो न करना। खड्ग, धनुष, हल, व दूसरी हिंसाकरनेवाली वस्तुएँ दूसरोंको देकर यश लूटना सो चौथा हिंसादान नामा अनर्थ दंडहै सो नकरना; जिन कथा कहानी किस्सोंसे मनमें रागद्वेष होवे ऐसी स्त्री, भोजन, राज, चोर कथा कहना व सुनना सो दुश्रुति नामा पांचवाँ अनर्थ दंडहै सो न करना। औरभी अनर्थ काम जिनसे पाप बंधै सो नहीं करना चाहिये।

(तीन गुणव्रतका स्वरूप समाप्त हुआ)

धर उर समता भाव, सदा सामायक करिये ।
परव चतुष्टै माहिं, पाप तज प्रोषध धरिये ॥
भोग और उपभोग, नियमकर ममत निवारै ।
मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥१३॥

परवचतुष्टै=(सं०) दो अष्टमी, दो चौदस. प्रोषध=(सं०) उपवास.
भोग=(सं०) जो एकदफे भोगनेमें आवे जैसे भोजन, फूल.
उपभोग=(सं०) जो बार २ भोगनेमें आवे जैसे खाट, कपड़ा, स्त्री.
ममत=(सं०) मोह ।

मनमें समता अर्थात् वीतराग परिणाम रखकर रोज एकस्थानमें सामायक करना सो सामायक नाम पहला शिक्षाव्रतहै; एकमासमें दो अष्टमी और दो चौदसको पापके कुल काम व्यापार व घरका सब धंधा छोड़ उपवास करना सो प्रोषधोपवास नाम दूसरा शिक्षाव्रत है । प्रतिदिन भोग और उपभोगकी वस्तुओंका अर्थात् १७ नियमका नेम लेना सो भोगोपभोग परिमाण नाम तीसरा शिक्षाव्रतहै । मुनिको (अथवा मध्यमपात्र श्रावक व जघन्य पात्र धर्मश्रद्धानी जैनी) आहार दान करके फिर आप भोजन करना सो चौथा अतिथिसंविभाग नाम शिक्षाव्रतहै ।

(४ शिक्षाव्रतका स्वरूप समाप्त हुआ.)

बारह व्रतके अतीचार पन पन न लगावै ।
मरण समै संन्यास, धार तसु दोष नशावै ॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलमउपजावै ।
तहँते चय नर जन्म, पाय मुनि हो शिव जावै ॥१४॥

अतीचार=(सं०) दोष. पन=(वि०) पांच.
संन्यास=(सं०) समाधिमरण.

ऊपर कहे जो बारह व्रत तिस हरएकके पाँच पाँच अतीचारहैं तिनको बचावै (इन अतीचारोंका स्वरूप श्रीरत्नकांड श्रावकाचारसे वा दशाध्याय

सूत्रजीसे जानना चाहिये) तथा इन व्रतोंको जन्मपर्यंत पालते हुए मरणके समय समाधिमरण धारै। उस समयके भी पांच अतीचार बचावे इस तरह जो श्रावक व्रतोंको पालतेहैं वे १६ स्वर्गतकमें जाकर देव पैदा होसक्तेहैं और फिर वहांसे आकर मनुष्य जन्म पाकर मुनि होय मोक्षमें जासक्तेहैं॥

चौथी ढालका भावार्थ ।

इसमें पहले व्यवहार सम्यग्ज्ञानका स्वरूपहै, सम्यग्दर्शन होनेके पहले जो ज्ञान होताहै उसे कुज्ञान कहतेहैं वही ज्ञान सम्यक्तहोनेपर सम्यक्ज्ञान कहलाताहै। सम्यक्ज्ञानहीसे आत्मज्ञान होताहै और आत्मज्ञानसे केवलज्ञान होताहै। इसलिये सम्यक्ज्ञान सबको प्राप्त करना चाहिये और उसका उपाय यही ग्रहण करना चाहिये कि, जैनशास्त्रोंका अभ्यास करना, पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, वार २ विचारना। ज्ञान होनेसे थोड़ीसी मिहनतमें भवभवके पाप कटतेहैं। जो अज्ञानीके करोड़ों जन्मकी मिहनतमेंभी नहीं कटसक्ते। इस लिये हरएक स्त्री और पुरुषको विद्या पढ़ ज्ञान प्राप्तकरना उचितहै। सम्यक्ज्ञानके पीछे श्रावकका एकदेश व्यवहार सम्यक्चारित्रका स्वरूपहै। श्रावक गृहस्थीका चारित्र १२ व्रतरूपहै सो श्रावकको यह उत्तम नरभवपाकर जरूर पालना चाहिये १६ स्वर्गतक इन व्रतोंके प्रभावसे प्राप्त होताहै दूसरे व्रतोंका धारी जगत्में बहुतही विश्वासपात्र होकर बहुत धन पैदा करसक्ता और उससे बहुतसे जीवोंका उपकार कर सक्ताहै॥

अथ पंचमढाल।

चाल छन्द १४ मात्रा ।

मुनि सकल व्रती बड़ भागी। भवभोगनतै वैरागी॥
वैराग्य उपावन माई। चिंतै अनुप्रेक्षा भाई॥ १॥

सकलव्रती=(वि०) पूर्ण पंचमहाव्रतधारी. उपावन=(क्रि०) पैदाकरनेको.
बड़भागी=(वि०) पुण्यवान. अनुप्रेक्षा=(सं०) वारंवार.

हे भाई! जो पुण्यवान अहिंसा आदि पांच महाव्रत धारण कर संसार और भोगोंसे उदास होकर मुनि होते हैं वे वैराग्यको पैदा करनेके लिये माताके समान ऐसी १२ भावनाओंका वारंवार विचार करते हैं ॥

तिन चिन्तत समसुख जागै। जिमि ज्वलन पवनके लागै॥
जवही जिय आतम जानै। तवही जिय शिवसुख ठानै॥२॥

जागै=(क्रि०) प्रकाशित होवै. जिमि=(क्रि० वि०) जैसे.
ज्वलन=(सं) अग्नि. ठानै=(क्रि०) प्राप्तकरै.

इन१२ वारह भावनाओंके चिन्तवन करनेसे समतारूपी सुख प्रकाशमान होजाता है। जैसे वायुके लगनेसे अग्नि प्रकाशित होती है। जवही यह जीव आत्माको जानताहै, तवही यह जीव मोक्षसुखको प्राप्त करताहै ॥

जोवन गृह गोधन नारी। हय गय जन आज्ञाकारी॥
इन्द्रिय भोग छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई॥३॥

हय=(सं०) घोड़ा. गय=(सं०) हाथी
सुरधनु=(सं) इंद्रधनुष जो वरसातमें निकलताहै. चपला=(सं०) विजली.
चपलाई=(सं०) चंचलता.

जोवन, घर, गौ, धन, स्त्री, घोड़ा, हाथी, आज्ञामाननेवाले चाकर, तथा पाँच इन्द्रियोंके भोग यह सव थोड़ी २ देर ठहरनेवाले हैं कोई सदा अपने पास अपने मनके मुआफिक रहनेवाले नहीं हैं। जैसे इंद्रधनुष देखते २ विलाजाताहै व विजली झटसे चमकके रुकजातीहै ऐसाही धन आदिका संजोग है। पुण्य क्षीण होनेसे सव चला जाता है, यह पहली अनित्यभावना कही ॥

सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यों हरि क[illegible]
मणिमंत्र तंत्र वहु होई। मरते न वचावै चित दीना॥

खगाधिप=(सं०) विद्याधरोंके ईश, चक्रवर्ती. हरि=(. अवलोके॥१०॥
दले=किये और आत्माके

जैसे सिंह हिरणको दलडालताहै उसीतरह यह काल जो मरण है सो देवता हो, असुर हो, चक्रवर्ती राजा हो, कोई भी हो सबको नाश करडालताहै । चाहे जितनी मणिहों, चाहे जितने मंत्र व अन्य तंत्र अर्थात् उपाय किये जांय, परन्तु कोईभी मरणसे किसीको बचा नहीं सक्ता है, यह दूसरी अशरणभावना है ॥

चहुँगति दुख जीव भरेहैं । परवर्तन पंच करेहैं ॥
सब विधि संसार असारा। तामें सुख नाहिं लगारा ॥५॥

भरेहैं=(क्रि०) सहतेहैं. लगारा=(वि०) थोड़ासाभी.
असार=जिसमें कुछ सार नहीं है.

जीव चारों गतियोंमें दुःख सहन करते हैं और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव ऐसे पांच परिवर्तन किया करते हैं । संसार सब तरहसे असारहै, इसमें थोड़ासाभी सुख नहींहै यह तीसरी संसारभावना है ॥

शुभ अशुभ करम फल जेते । भोगे जिय एकै तेते ॥
सुत दारा होय न सीरी । सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ६ ॥

एकै=(वि०) अकेला. दारा=(सं०) स्त्री.
सीरी=(वि०) साझी, साथी. भीरी=भीड़करनेवाले, सगे.

अपने पुण्य और पापकर्मोंके जो अच्छे बुरे फल हैं, तिनको यह जीव आप अकेला भोगताहै । अपना पुत्र अपनी स्त्री कोईभी दुःख सुखके साझी नहीं होसक्ते अर्थात् बटा नहीं सक्ते, पुत्र दारादि सब अपने २ मतलबके सगे हैं, यह चौथी एकत्वभावना है ॥

जलपय ज्यों जियतन मेला । पै भिन्न २ नाहिं भेला ॥
सु[illegible]रे धनधामा । क्यों हों इकमिल सुत रामा ॥७॥

वैराग्य उपाव॰

मेला=(वि०) मिलाहुआ.
सकलव्रती=(वि०) [illegible]. धामा=(सं०) जगह, स्थान.
बड़भागी=(वि०) पुण्[illegible]

जैसे जल और दूधका मेलहो इसी तरह शरीर और जीवका मिलापहै, परन्तु जीव और शरीर दोनों अलग अलग हैं मिले नहीं है। जो अपना धन और जगह (जिसपर अपना अधिकार माना जाताहै) प्रगट रूपसे अपनेसे अलगहै तो फिर पुत्र और स्त्री (जो छिनभरमें अपनेसे विगड़जाते हैं) अपने कैसे होंगे ? यह अन्यत्वभावना पांचमी है ॥

पल रुधिर राध मल थैली। कीकश वसादि तैं मैली ॥
नवद्वार वहैं घिनकारी। अस देह करै किम यारी ॥८॥

पल=(सं०) मांस. कीकश=(सं०) हाड़.
रुधिर=(सं) खून. वसा=(सं०) चरवी.
राध=(सं०) पीप. नवद्वार=शरीरसे मैल बाहर आनेके ९ रास्तेहैं। दो आंख, दो कान, दो नथने, एक मुख, दो नीचेके स्थान-प्रस्राव, पाखानेके.
यारी=(सं०) प्रीति.

यह देह मांस, खून पीव और विष्ठाकी थैली अर्थात् कोथली है, हाड़ चरवी आदि अपवित्र वस्तुओंके कारण मलीनहै, जिस देहके नव-रास्तोंसे चित्तको घिन आवे ऐसा मैल वहाकरता है ऐसी अपावन देहसे कैसे प्रीति करनी चाहिये ? यह छठी अशुचिभावना का स्वरूप है ॥

जे योगनकी चपलाई। ता तैं होय आश्रव भाई ॥
आश्रव दुखकार घनेरे। बुधिवंत तिन्हें निरवेरे ॥ ९ ॥

बुधिवंत=(सं०) बुद्धिमान विचारवान. निरवेरे=(क्रि०) दूर करे.

हे भाई मन वचन कायके चंचलपनेसे कर्मोंका आना होताहै, ऐसा कर्मोंका आश्रव बहुतही दुःखदाई है विचारवान् पुरुष इन आश्रवोंको दूर करतेहैं, यह सातमी आश्रवभावना है ॥

जिन पुण्य पाप नाहिंकीना। आतम अनुभव चित दीना ॥
तिनहीं विधि आवत रोके। संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

जिन जीवोंने पुण्य और पापके भाव नहीं किये और आत्माके

विचारमें अपने मनको लगाया तिन्होंने ही आतेहुए कर्मोंको रोका और संवरकी प्राप्ति कर सुखको देखा—यह आठवीं संवरभावना है ॥

निजे काल पाय विधि झरना। तासों निजकाज न सरना॥
तपकर जो कर्म खपावै। सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥

सरना=(क्रि०) होना. खपावै=(क्रि०) दूरकरै.

अपना काल पाकर जो कर्मोंका झरना उससे अपना काम नहीं होनेका है। तप करके जो कोई कर्मोंको उनकी स्थिति पूरी होनेके पहलेही दूर करता है वही मोक्षसुख अपनेमें दिखलाताहै—यह निर्जराभावना नवमी है ॥

किनहूं न करो न धरै को। षटद्रव्यमयी न हरै को॥
सोलोकमाहिं बिन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता १२

धरै=(क्रि०) उठाना. हरै=(क्रि०) नाशकरना.

इसलोक अर्थात् जगतको किसीने बनाया नहीं है और न कोई इसको उठाये हुएहै। यह लोक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ऐसे छः द्रव्योंसे हरजगह भराहै। कोई इस लोकको कभी नाश नहींकर सक्ता (इसलोकके चारों तरफ तीनतरहकी वायुहैं, जो इसलोकको थामे हुए)हैं ऐसे लोकके भीतर यह जीव विना समता अर्थात् वीतरागताके नित्य घूमाकरता और दुःख सहा करताहै। यह दशवीं लोकभावना है ॥

अंतिम ग्रीवकलोंकी हद। पायो अनंत विरियाँ पद॥
पर सम्यक्ज्ञान न लाधो। दुर्लभ निजमें मुनि साधो॥१३॥

विरियां=(क्रि० वि०) वार, दफे. लाधो=(क्रि०) प्राप्त किया.
दुर्लभ=(वि०) कठिन.

इस जीवने अंतिम अर्थात् नवमें ग्रीवककी हदतक जा २ कर अनंत वार वहांका अहमिंद्रपद पाया (सम्यक् ज्ञान विना) परन्तु सम्यक्ज्ञान इसको प्राप्त न हुआ। ऐसे कठिन सम्यक्ज्ञानको मुनियोंने आत्मामें साधन कियाहै। यह बोधदुर्लभभावना ग्यारहवीं हुई ॥

जो भाव मोहतैं न्यारे। दृगज्ञान व्रतादिक सारे॥
सो धर्म जबै जिय धारै। तबही सुख अचल निहारे॥ १४॥

दृग=(सं०) सम्यक्दर्शन. अचल=(वि०) जो चंचल न हो, थिर.

सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदिके जितने भाव हैं वे सब मोहभावसे जुदे हैं और यही भाव धर्मरूप हैं; इस धर्मको जब जीव धारण करै तबही स्थिर सुखको देखै। यह बारहवीं धर्मभावना है॥

सो धर्म मुनिनकर धरिये। तिनकी करतूति उचरिये॥
ताकूं सुनिये भवि प्राणी। अपनी अनुभूति पिछानी॥१५॥

करतूति=(सं०) क्रियाएं. उचरिये=(क्रि०) कहतेहैं.
अनुभूति=(सं०) अनुभव, हृदयका विचार.

ऐसा जो धर्महै उसको (सम्पूर्ण पने) मुनि पालते हैं, तिन मुनियोंकी क्रियाएँ आगे कहते हैं, सो हे भव्यप्राणी अपने अनुभवमें पहचानकर तिनको सुनो॥

पंचम ढालका भावार्थ।

बारह भावनाओंका स्वरूप थोड़ेमें कहाहै। इन भावनाओंका विशेष स्वरूप स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा अथवा श्रीज्ञानार्णवजीसे सुनकर चित्तमें धारना चाहिये। मुनि तो रोज इनका विचार करतेही हैं परन्तु श्रावकोंकोभी रोज विचारकर अपने मनको कोमल करना चाहिये। इन भावनाओंके विचारसे धर्ममें विशेष प्रीति होती है॥

अथ षष्ठ ढाल।

हरिगीता छंद २८ मात्रा।

षट काय जीवन हनन तैं सब, विध दरबहिंसा टरी॥
रागादि भाव निवारतैंहिंसा, न भावित अवतरी॥

जिनके न लेश मृषा न जल मृण, हू विना दीयो गहैं।
अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं॥१॥

पटकाय=(सं०) छः कायके जीव (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु वनस्पति और त्रस)
हनन=(क्रि०) मारना. अवतरी=(क्रि०) आई.
मृषा=(सं०) झूठ. मृण=(सं०) मिट्टी.
सहस=(सं०) हजार. चिद्ब्रह्म=(सं०) चैतन्यरूप आत्मा.

छः कायके जीवोंको नहीं मारने अर्थात् रक्षाकरनेसे सब तरह द्रव्य हिंसाको दूर किया। तथा रागद्वेष वगैरे भावोंको दूरकरनेसे भाव हिंसाभी नहीं आई, यह मुनियोंका पहला अहिंसा-महाव्रत है॥ जो थोड़ासा भी झूठ नहीं बोलते सो दूसरा सत्य-महाव्रत है॥ जो पानी और मट्टीतक भी विना दीहुई न लेते हैं सो तीसरा अचौर्य-महाव्रत है॥ जो १८००० अठारह हजार शीलके अङ्गोंको पालकर (सब स्त्री मात्रका त्याग कर) सदा चैतन्यस्वरूप आत्मामें रमतेंहै सो चौथा ब्रह्मचर्य्य-महाव्रत है॥

अंतर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चौ कर मही लखि, समिति ईर्य्यातैं चलैं॥
जग सु हितकर सब अहितहर श्रुति सुखद सब संशय हरै
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन मुख,-चंद्रतैं अमृत झरै॥२॥

धा=(वि०) तरह. मही=(सं०) जमीन, पृथ्वी.
चौ=(वि०) चार. श्रुत=(सं०) कान.
कर=(सं०) हाथ. सुखद=(वि०) सुखदाई.
भ्रमरोगहर=(वि०) मिथ्यात- रूपी रोग हरनेवाले. संशय=(सं०) शंका, शक.

१४ चौदह तरहकी अंतरंग और १० दश तरहकी बहिरंग परिग्रह को जो टालतेहैं, यह पाचवाँ परिग्रहत्याग-महाव्रत है। जो मुनि आलस छोड़कर अपने आगे चार हाथ जमीन देखकर चलते हैं सो पहली ईर्या-समिति है। जिनके मुखरूपीचंद्रमासे जगत्को भला करनेवाले;

सबतरहकी बुराई हरनेवाले, कानोंको सुखकारी, सब शंका दूरकरने वाले, और मिथ्यातरूपी रोगके दूर करनेवाले ऐसे वचन निकलतेहैं सो दूसरी भाषा-समिति है ॥

छालीस दोष विना सुकुल, श्रावक तणे घर अशनको ।
लैं तप वढ़ावन हेत नाहिं तन, पोषते तज रसनको ॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण लखि, के गहैं लखिके धरैं ।
निर्जंतु थान विलोक तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं॥३॥

अशन=(सं०) भोजन. ज्ञानउपकरण=(सं०) ज्ञानका पात्र, शास्त्र.
शुचि=(वि०) पवित्र. संयम उपकरण=(सं०) संयमका पात्र. पीछी कमंडल,
रस=(सं०) छह रस-दूध, देही, घी, तेल, मीठा, नमक, निर्जंतु=(वि०) जीवरहित.
परिहरैं=(क्रि०) छोड़ैं. श्लेषम=(सं०) नाक थूक.

जो मुनि छ्यालीस दोष दूरकर कुलीन श्रावकके घरमें भोजन सिर्फ शरीरसे तप बढ़ानेके लिये लेते हैं, शरीरके पुष्टकरनेका मतलब नहीं है; कभी २ एक व बहुत रसोंको भी छोड़देते हैं, यह तीसरी एषणा-समिति है। अपने पास जो पवित्र शास्त्र और पीछी कमंडल होताहै उसे कोभी जमीनदेखके उठाते और रखतेहैं-यह चौथी आदाननिक्षेपण-समिति है ॥ जीवोंसे रहित ऐसी जगहको देखकर जो अपनी देहका मल,मूत्र और नाक थूक छोड़ते हैं,सो पांचवीं व्युत्सर्ग-समितिहै ॥

सम्यक्प्रकार निरोधमन वच काय आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर मुद्रादेखि मृगगण, उपल खाज खुजावते ॥
रस, रूप, गंध तथा परस अरु, शब्द शुभ असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध पंच, इन्द्रीजयन पद पावने॥४॥

सम्यक्=(क्रि०वि०) भली.
निरोध=(क्रि०) रोकके.
सुथिर=(वि०) एकाग्र, ध्यानमें लीन.
मुद्रा=(सं०) रूप, मूर्ति.
मृगगण=(सं०) हिरणके समूह.
उपल=(सं०) पत्थर.
विरोध=(सं०) द्वेष.

जो भलेप्रकार अपने मन वचन और कायको रोककर अपने आत्माका ध्यान करतेहैं ऐसे मुनियोंकी एकाग्रध्यानमें लीन मूर्तिको देखकर हिरणों के समूह हैं सो मुनि महाराजकी देहको पत्थर जान अपने शरीरकी खाज खुजातेहैं। सो मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ऐसी तीन गुप्तियाँ कहलातीहैं ।जो पाँच इन्द्रियोंके विषय रस अर्थात् स्वाद लेना, रूप अर्थात् देखना, गंध अर्थात् सूँघना, परस अर्थात् छूना, और शब्द अर्थात् सुनना यह पाँचों विषय सुहावनेहों अथवा असुहावनेहों परन्तु मुनि महाराज उनमें राग,द्वेष नहींकरते इसलिये पंचेंद्रीविजई अर्थात् जितेन्द्री पदको पातेहैं॥ यह पाँचइन्द्रियोंका जीतना मुनिकी पाँच क्रियाएँहैं ॥

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिन देवको ।
नित करैं श्रुति रति करैं प्रतिक्रम, तजें तन अहमेवको ॥
जिनके न न्हौन न दंतधोवन लेश अंबर आवरण ।
भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु, शयन एकासन करण ॥५॥

समता=(सं०) सामायक.
सम्हारैं=(क्रि०) सम्हालके करैं.
थुति=(सं०) स्तुति, भजनगाना.
तनअहमेव=(सं०) शरीरसे आत्माको एक मानना अर्थात् ऐसा न करके कायोत्सर्ग करना.
शयन=(सं०) नींदलेना.
श्रुतिरति=(सं०) स्वाध्याय.
प्रतिक्रम=(सं०) पिछले किये दोषोंको. पछताना और दंड लेना.
अंबर आवरण=(क्रि०) कपड़ा पहनना
रयनि=(सं०) रात.
एकासन=(सं०) एककरवट.

जो मुनि सामायक सम्हालकर करते हैं, भगवन्तोंकी स्तुति करते हैं, जिन देवको वन्दना करतेहैं; स्वध्याय करतेहैं, प्रतिक्रमण और

कायोत्सर्ग करते हैं। यह मुनियोंके रोज करनेके छः आवश्यक हैं। जो स्नान नहीं करते, दाँत नहीं धोते, जरासा कपड़ा नहीं पहिनते, जमीनमें पिछली रातको एक करवट करके थोड़ी नींद लेते हैं तथा।

इकवार लेत आहार दिनमें, खड़े अलप निज पानमें।
कचलौंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यानमें॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, कांच निन्दन थुतिकरण।
अर्घावतारण असि प्रहारण, में सदा समता धरण॥६॥

पान=(सं०) हाथ. परिषह=(सं०) दुःख.
कच=(सं०) वाल. अरि=(सं०) शत्रु.
लौंच=(सं०) नोचना. अर्घावतारण=(सं०) अर्घ उतारना.
असि प्रहारण=(सं०) खड्ग मारना.

जो मुनि एकवार दिनके समय थोड़ासा आहार लेते हैं सो भी खड़े होकर अपने हाथमें, और जो अपने बालोंका लौंच अपने हाथसे करते हैं, अपने ध्यानमें लगेहुए दुःखसे नहीं डरतेहैं। यहांतक साधुके २८ मूलगुण कहे, जो साधुमें होनाही चाहिये। जैसे ५ महाव्रत + ५ समिति + ५ इंद्रीजयन + ६ आवश्यक + १ न्हाना नहीं + १ दांतधोना नहीं + १ शरीरको नग्न रखना + १ जमीनपर सोना + १ एकवार भोजन करना+१ हाथोंमें खड़े हुए लेना +१ अपने बालोंका लौंच करना=२८ मूलगुण। जिन मुनिके शत्रु-मित्र, महल-मसान, सुवर्ण-कांच, निन्दा-स्तुति और उनकी पूजा करना व उनको खड्गका मारना सब बराबर हैं कोई भी दशा हो समता धरते हैं।

तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रतन त्रय सेवैं सदा।
मुनि साथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा॥
योंहै सकल संयम चरित मुनि,—ये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि,मिटै परकी प्रवृति सब॥७

द्वादशतप=(सं०) १२ बारह जातिका तप जैसे १ अनशन (उपवास करना), २ ऊनोदर (भूखसे कम खाना), ३ व्रतपरिसंख्यान (भोजन करते जाते घर आदिका नियम करना), ४ रसपरित्याग (छः रस व एक दो रस छोड़ना), ५ विविक्त शय्यासन (अलग स्थानमें सोना बैठना), ६ कायक्लेश (शरीरको कष्टदे, नदी किनारे आदि तप करना)—ये छः बाहरके तप हैं ॥१॥ प्रायश्चित्त (दोषोंका दंडलेना), २ विनय (रत्नत्रय व उसके धारकोंकी विनय करना), ३ वैयावृत्य (रोगी वृद्ध मुनिकी सेवा करना), ४ स्वाध्याय (शास्त्र पढ़ना), ५ कायोत्सर्ग (खड़े होकर योग साधना), ६ ध्यान (धर्म व शुक्ल ध्यान करना)—ये छः अंतर तप हैं। ऐसे १२ तप हुए॥ दशवृष=(सं०) दशधर्म, जैसे—१ उत्तमक्षमा (क्रोध न करना), २ उत्तम मार्दव (मान न करना), ३ उत्तम आर्जव (कपट न करना), ४ उत्तम सत्य (सत्य बोलना), ५ उत्तम शौच (लोभ न करना), ६ उत्तम संयम (नियम आंकड़ी लेना), ७ उत्तम तप (तपना), ८ उत्तम त्याग (दान करना), ९ आकिंचन (अपना जगमें कुछ न समझना, परिग्रह त्याग), १० ब्रह्मचर्य (स्त्री मात्र त्याग) ॥ रत्नत्रय (सं०) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ॥ विचरैं=(क्रि०) घूमैं. स्वरूपाचरन=(सं०) निश्चय आत्मलीन चारित्र. निधि=(सं०) दौलत, (ज्ञानादि). प्रवृत्ति=चलना ।

जो मुनि १२ बारह प्रकार तप और दशलक्षण धर्मको धारते हैं तथा तीन रतन की सदा सेवा करते हैं, कभी दूसरे मुनिके साथमें कभी अकेले विहार करते हैं, तथा संसारके सुखको कदा अर्थात् कभीं नहीं चाहतेहैं। इस तरह ऊपर कहे अनुसार मुनिका सकल चारित्र वर्णन किया। अब निश्चय आत्म चारित्रको कहते हैं, जिससे अपने आत्माकी ज्ञानादि दौलत प्रगट होती है और परवस्तुमें अपना चलना सब तरहसे मिटता है ।

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डार अंतर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भावको न्यारा किया ॥
निजमाहिं निजके हेत निजकर, आपको आपै गह्यो ।
गुणगुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मँझार, कुछ भेद न रह्यो ॥ ८ ॥

पैनी=(वि०) तेज काटनेवाली. वरणादि=(सं०) पुद्गलके वरण आदि २० गुण.
सुबुधि=(वि०) भेद ज्ञान, दो मिली हुई चीजोंको अलग २ करनेका ज्ञान.
न्यारा=(वि०) जुदा, अलग. गुणी=(सं०) जिसके भीतर गुण हों.
छैनी=(सं०) छेनी, कटारी. ज्ञाता=(सं०) जाननेवाला.
भेदिया=(क्रि०) तोड़डाला. ज्ञान=(सं०) जिससे जाने.
मँझार=(सं० अ०) भीतर. ज्ञेय=(सं०) जिसको जाने,

जिन मुनियोंने स्वरूपाचरणके समय बहुत तेज ऐसी भेदज्ञानरूपी छेनीसे अपने अंतरंगका परदा तोड़ा तथा शरीरके जो वर्ण आदि २० गुण हैं उनसे और राग, द्वेष, क्रोध, मान आदि भावोंसे अपने आत्मीकभावको जुदा करदिया, फिर अपने आत्माहीके भीतर अपने आत्माके हितके लिये अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको आपही ग्रहण करलिया अर्थात् पकड़लिया; तब गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयके भीतर कुछ भेद न रहा अर्थात् ध्यानमय अवस्थामें सब एक होगये, विकल्प मिटगया॥

जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न, विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोगकी निश्चल दशा ।
प्रगटी जहाँ दृगज्ञानव्रह्म ये, तीन धा एकै लशा ॥९॥

विकल्प=(सं०) भेद. चिद्भाव=(सं०) आत्मीकभाव.
चिदेश=(सं०) आत्मा. अभिन्न=(वि०)एक,दूसरेसे जुदे नहीं.
अखिन्न=(वि०) एक दूसरेसे टूटे नहीं, उपयोग=(सं०) भाव.
ध्यान=(सं०) जिससे ध्यान करे. ध्याता=(सं०) ध्यान करनेवाला.
ध्येय=(सं०) जिसका ध्यान करे.

जिस आत्मध्यान अवस्थामें ध्यान, ध्याता, और ध्येयका कोई भेद नहीं है, न वचनसे कहनेलायक कोई भेदहै। आत्माही कर्म, आत्माही

कर्ता और आत्माका भाव सो ही क्रियाहै, यह कर्ता-कर्म-क्रियाभाव बिलकुल जुदे नहीं हैं, न एक दूसरेसे टूटनेलायक हैं, यहां तो शुद्धभावकी स्थिर अवस्था हैं जहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो तीन हैं वे भी एकरूप होकर प्रकाशमानहोरहे हैं ॥

परमाण नय निक्षेपको न उद्योत, अनुभवमें दिखै ।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं,आन भाव जो मोविखै॥
मैं साध्य साधक मैं अवाधक, कर्म अर तसु फलनितैं ।
चितपिंड चंड अखंड सुगुण, करंडच्युत पुनि कलनितैं॥१०

परमाण=(सं०) प्रत्यक्ष, परोक्षप्रमाण.　नय=(सं०) नैगमादिनय.
निक्षेप=(सं०) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव.　उद्योत=(सं०) प्रकाश.
साध्य=(सं०) जिसकी सिद्धि कीजिये.　अवाधक=(सं०) वाधारहित.
साधक=(सं०) सिद्धि करनेवाला.　चंड=(वि०) तेजमान.
कलनि=(सं०) मैल.　करंड=(सं०) पिटारा.

जहां प्रमाण, नय, निक्षेपका प्रकाश नहीं दीखता है और वह ऐसा विचारता है कि दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्यरूपही भाव मेरेमें है, दूसरा कोई भाव नहीं है । मैं ही साध्य व साधक हूं तथा मैं कर्म और उनके फलोंसे वाधारहित हूं, मैं चैतन्यका पिंड अर्थात् समूह हूं, प्रचंड खंड-रहित, उत्तमगुणोंका पिटारा तथा सर्वमैलसे अलग हूं ॥

यों चिन्त्य निजमें थिर भये तिन, अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अह,-मिन्द्र कै नाहीं कह्यो ॥
तबही शुकल ध्यानाग्नि कर चउ, घात विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवल ज्ञान करि भवि, लोककूं शिवमगकह्यो ॥

काननं=(सं०) वन.　अकथ=(वि०) जिसका वर्णन नहीं होसके.

इसतरह विचारकर श्रीमुनिमहाराज अपने आत्मामें थिर होगये, उससमय अकथ आनन्दको प्राप्त करतेहुए जिस सुखका वर्णन इन्द्र,

नागेन्द्र, नरेन्द्र अर्थात् चक्रवर्ती राजा व अहमिंद्र कोई नहीं कहसक्ता। तवही शुक्लध्यानरूपी अग्निसे चार घातिया कर्मरूपी वनको जलातेहुए और केवल ज्ञान प्राप्तकर सब जानतेहुए और भव्यजीवोंको मोक्षमार्गका उपदेश करतेहुए ॥ (अरहंत हो जातेहुए)

पुनि घाति शेष अघात विधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसै।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त आदिक सब लसै॥
संसार खार अपार पारा, वार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुध, चिद्रूप अविनाशी भये॥१२॥

शेष=(वि०) बाकी. अष्टमभू=(सं०) मोक्ष.
पारावार=(सं०) समुद्र. अविकार=(वि०) दोषरहित.
लसैं=(क्रि०) शोभतेहुए.

फिर बाकी जो चार अघातिया कर्म आयु, नाम, गोत्र, वेदनी थे उनकाभी एक क्षणमें नाशकर मोक्षमें जावसे, आठकर्म नाश होनेसे सम्यक्त आदि, आठगुण शोभतेहुए (मोहके नाशसे सम्यक्त, ज्ञानावर्णीके नाशसे ज्ञान, दर्शनावर्णीके नाशसे दर्शन, अंतरायके नाशसे वीर्य, आयुके नाशसे अवगाहना, नामके नाशसे सूक्ष्मत्व, गोत्रके नाशसे अगुरुलघु, वेदनीके नाशसे अव्यावाध ऐसे ८ आठ गुण प्रगटभये)। संसाररूपी खारी और अपार समुद्रको तिरकर किनारेपर जातेहुए और दोषरहित, देहविना, रूपरहित, शुद्ध चैतन्यरूप, विनाशरहित, ऐसे सिद्ध भगवान् होतेहुए॥

निजमाहिं लोक अलोक गुण, पर्याय प्रतिविम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल य,–था तथा शिव परणये॥
धनि धन्य हैं जे जीव नर भव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादी भ्रमण पंच,प्रकार तज वर सुख लिया॥१३

प्रतिबिम्बित थये=(क्रि०) जैसे दर्पणमें दीखैं तैसे देखतेहुए. परणये=(क्रि०) रहे हैं.
वर=(वि०) उत्तम.

सिद्ध भगवानकी आत्मामें तीनलोक और अलोक अपने गुण और अवस्थाओं कर सहित ऐसे झलकते हैं जैसे दर्पणमें पदार्थ दीखैं। इस तरह जैसे और सिद्ध भगवान् रहे हैं, तैसे यहभी अनन्तानन्त कालतक रहेंगे। वे जीव धन्य हैं जिन्होंने मनुष्यभव पाकर ऐसा काम किया। ऐसेही जीवोंने अनादिकालसे चला आता जो पंचप्रकार परावर्तन उसको त्यागकर उत्तम सुखकी प्राप्ति की ॥

मुख्योपचार दुभेद यों बड़,—भाग रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन, सुयशजल जगमल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहै तब,लों जगत निजहित करो॥१४

मुख्योपचार=(सं०) निश्चय, व्यवहार.　बड़भाग=पुण्यवान.

जो पुण्यवान जीव निश्चय और व्यवहार ऐसे दो भेदरूप रत्नत्रयको धारण करते हैं और धारण करेंगे,ते जीव मोक्षको प्राप्त करेंगे तथा तिनका सुयशरूपी जल जगत्के मैलको हरेगा। ऐसा जान आलस दूरकर साहस करके यह उपदेश मानो कि, जबतक रोग और बुढ़ापा नहीं आवे तब तक जगत्में अपना भला कर डालो।

यह राग आग दहै सदा ता,—तैं समामृत पीजिये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद लीजिये ॥
कहा रच्यो पर पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब दौल होऊ सुखी स्वपद रचि,दाव मत चूको यहै॥१५॥

समामृत=(सं०) समतारूपी अमृत.　चिर=(क्रि० वि०) सदासे.
स्वपद=(सं०) अपना सिद्धपद.　दाव=(सं०) अवसर, समय.

जगत्में यह रागरूपी आग सदा जलरही है (जिससे जीव दुखी हो रहे हैं) इसलिये समतारूपी अमृत पीना चाहिये। सदासे विषय कषायोंको

सेवनकिया। अब तो इनको छोड़कर अपना (सिद्ध) पद लेलेना चाहिये। परवस्तुमें क्यों लुभारहाहै? यह तेरा पद नहीं है, क्यों तू दुःख सहताहै? हे दौलतराम! अब अपने आत्माके पदमें मन लगाकर इस अवसरको मत चूक॥

छठी ढालका भावार्थ।

इसमें मुनिका १३ तेरह प्रकार चारित्र (महाव्रत ५ + समिति ५ + गुप्ति ३) तथा साधुके २८ मूल गुण कहे हैं। पश्चात् निश्चय चारित्रका वर्णन करतेहुए शुद्धोपयोग अवस्था दिखलाई है, जहां ध्याता, ध्यान, ध्येयका भेद नहीं रहता। ऐसे निश्चल ध्यानके बलसे ८ वें गुणस्थानमें चढ़कर शुक्लध्यानको ध्याताहै। फिर १२ वें गुणस्थानमें पहुंचकर दूसरे शुक्लध्यानसे चार घातिया कर्मोंका नाश कर केवल ज्ञान प्राप्तकर अरहंत हो भव्यजीवोंको मोक्षमार्ग दिखलाता है। फिर शेष चार अघातियाकर्मोंकोभी नाश कर सर्व कर्मोंसे और शरीरसे छूटकर तीन लोकके ऊपर जा सिद्धलोकमें पहुंचकर, सिद्ध कहलाता है, सिद्ध जीव वहां अनन्तकालतक सुख भोगते रहते हैं। संसारके आवागमनसे छूटजाते हैं। इस आनन्दमय सिद्ध अवस्था पानेका कारण निश्चय और व्यवहार ऐसे दो भेदरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। सो भव्य जीवोंको आलस छोड़कर ग्रहण करना चाहिये। जिन विषयकषायोंको हमेशासे सेया किया, उनसे मन हटा मोक्षसुख पानेका उद्यम करना चाहिये। जो उद्यम इस मनुष्यभव सिवाय दूसरेमें नहीं हो सक्ता। तथा इस नरभवका पाना बड़ाही कठिन है। एक दफे वृथा खोनेसे फिर मिलना बहुत ही दुर्लभ है। इसलिये अभी जो मौका मिला है उसको नहीं चूकना चाहिये।

दोहा।

इक नव वसु इक वर्षकी, तीज सुकुल वैशाख।
कर्‌यो तत्वउपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख॥१॥

लघु धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव कूल ॥ २॥

धी=(सं०) वुद्धि. सुधी=(सं०) वुद्धिमान्. कूल=(सं०) किनारा.

पंडित दौलतरामजीने पंडित वुधजनकृत छः ढालेकी छाया लेकर यह तत्वउपदेश संवत् १८९१ मिती वैसाखसुदीतीजको पूर्ण किया। पंडितजी कहतेहैं कि, थोड़ी वुद्धि तथा प्रमादसे जो कहीं शब्द और अर्थकी भूल रहगई हो, तो वुद्धिमानजन! सदा सुधारकर पढ़ो जिससे संसारके किनारेकी प्राप्ति हो।

-इति श्रीपंडित दौलतरामकृत छह ढाला भाषाटीका सहित समाप्तम् ॥

पांच तीन अरु चार दो, वीर मार्गशिरश्वेत।
गजपंथा टीका भई, आतम अनुभव हेत ॥

इति छह ढाला।

प्रश्नावली.

प्रथम ढाल.

१-लोक किसे कहते हैं ?
२-लोक कितने और कौन २ हैं ?
३-वीतराग किसे कहते हैं ?
४-त्रियोग के नाम बताओ ?
५-तीन लोकके अनंत जीव क्या चाहते हैं ?
६-जीवका अनादिकालसे संसारमें भ्रमण करनेका क्या कारण है ?
७-यह जीव निगोद राशि में कितने काल तक रहा और इसने कौन २ शरीर धारण किये ?
८-निगोद राशिमें एक श्वासमें कितने बार जन्म मरण होता है ?
९-निगोद किसे कहते हैं ?
१०-त्रसजीव किन्हें कहते हैं ?
११-श्वासमात्र कितने समयका होता है ?
१२-इस जीवने निगोद राशिसे निकलकर कौन २ पर्याय धारण कीं?
१३-त्रस पर्याय पाना कितना कठिन है उसे दृष्टान्तसे समझाओ ?
१४-द्विइन्द्री, तेइन्द्री, चौइन्द्री, पंचेन्द्री जीवोंके दृष्टान्त बताओ ?
१५-सैनी और असैनी जीव किन्हें कहते हैं ?
१६-इस जीवने पशु पर्यायमें कौन २ दुःख सहन किये हैं ?
१७-खोटे परिणामोंसे मरण करनेपर कौन गति प्राप्त होती है ?
१८-नर्क भूमिको स्पर्श करनेसे जो दुःख होता है उसे वर्णन करो ?
१९-नर्ककी नदीका वर्णन करो ?
२०-नर्कमें जो सेमर वृक्ष होते हैं उनका वर्णन करो ?
२१-नर्कमें ठंड और उष्णता कितनी होती है ?
२२-असुरकुमार जातिके देव कौन नर्क तक जाते और क्या करते हैं?

२३–नारकियोंके शरीरका वर्णन करो ?
२४–नर्कोंमें तृषाजनित दुःखका वर्णन करो ?
२५–नरकोंका क्षुधाजनित दुःखका वर्णन करो ?
२६–नर्कमें आयु कितनी होती है ?
२७–मनुष्य गति कैसे प्राप्त होती है ?
२८–जीवको मनुष्य गतिमें आनेपर कौन २ से दुःख उठाने पड़ते हैं?
२९–अज्ञानी मनुष्यने बालकपन, युवापन और वृद्धापनको किस प्रकार खोये सो वर्णन करो ?
३०–अकाम निर्जरा किसे कहते हैं और इससे क्या फल होता (मिलता) है ?
३१–भवनत्रिकमें कौन २ दुःख हैं वर्णन करो ?
३२–विमानवासी देव कौन हैं ?
३३–यह जीव स्वर्गमें भी क्यों दुःख उठाता है ?
३४–संसारमें परिभ्रमण करने और उससे छूटनेका कारण बताओ ?
३५–इस ढालका भावार्थ लिखो ?

द्वितीय ढाल.

१–इस संसारमें यह जीव किस कारणसे भ्रमण करता रहता है ?
२–प्रयोजन भूत तत्वोंके नाम लो ?
३–ये सात तत्त्व प्रयोजन भूत क्यों हैं ?
४–मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?
५–आत्माका लक्षण बताओ ?
६–मूर्तिक किसे कहते हैं और अमूर्तिक किसे कहते हैं ?
७–मिथ्यादर्शनका लक्षण कहो ?
८–मिथ्यादर्शनके उदयकर यह जीव अपनेको किस प्रकार समझता है ?
९–मिथ्यादृष्टी जीव, जन्म और मरण किस प्रकार मानते हैं ?
१०–रागादिभावोंसे क्या होता है ?

११–मिथ्यादृष्टी जीव, रुचि और अरुचि किससे करते हैं ?

१२–साहजिक (स्वाभाविक) आनन्द रूप अपनी आत्मशक्तिको भूल जानेका प्रधान कारण क्या है ?

१३–मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

१४–मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं ?

१५–मिथ्यात्व कितने प्रकार के हैं ?

१६–गृहीत मिथ्यात्वका कारण क्या है ?

१७–मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्ररूप भाव कबतक रहते हैं ?

१८–कुगुरुका स्वरूप कहो और वे पत्थरकी नावके समान क्यों माने गये हैं ?

१९–दर्शन मोह किसे कहते हैं ?

२०–खोटे देव कौन हैं और उनकी सेवा करनेसे क्या होता है ?

२१–खोटे धर्मका लक्षण कहो और उससे क्या होता है ?

२२–गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

२३–गृहीत मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहो ?

२४–मिथ्याचारित्रके और भी उदाहरण दो ?

२५–इस ढालका सारांश बताओ ?

तृतीय ढाल.

१–सच्चा सुख कौनसा है ?

२–ऐसी अवस्था बताओ जहांपर आकुलता नहीं है ?

३–मोक्ष कहां है ?

४–सच्चा सुख पानेके लिये क्या उपाय है ?

५–मोक्ष मार्गका रास्ता बताओ ?

६–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके भेद (प्रकरण) बताओ ?

७–निश्चयरूप मोक्षमार्ग किसे कहते हैं ?

८–व्यवहाररूप मोक्षमार्ग किसे कहते हैं ?
९–निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?
१०–निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?
११–निश्चय सम्यक्‌चारित्र किसे कहते हैं ?
१२–व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?
१३–शास्त्रोंमें तत्त्वज्ञान होनेपर भी-मिथ्यात्त्व क्यों कहा है ?
१४–इसलिये सम्यग्दर्शनकी परिभाषा क्या हुई ?
१५–आत्माका लक्षण क्या है ?
१६–तीन प्रकारकी आत्मा बताओ ?
१७–बहिरात्मा जीव किसे कहते हैं ?
१८–अंतरात्मा (जीव) किसे कहते हैं ?
१९–अंतरात्मा जीव कितने प्रकारके हैं ?
२०–उत्तम अंतरात्मा जीव कौन हैं ?
२१–अंतरंग परिग्रहके नाम लो ?
२२–परिग्रहके भेद बतलाओ ?
२३–बहिरंग परिग्रहके नाम बताओ ?
२४–सामान्य और विशेषका भेद बताओ ?
२५–मध्यम अंतरात्मा जीव कौन हैं ?
२६–जघन्य अंतरात्मा जीव कौन हैं ?
२७–परमात्मा किसे कहते हैं और वे कितने प्रकार के हैं ?
२८–सकल परमात्मा किसे कहते हैं ?
२९–चार घातिया कर्मोंका नाम बताओ ?
३०–चार अघातिया कर्मोंके नाम बताओ ?
३१–कर्म कितने प्रकारके हैं ?
३२–द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मके भेद बताओ ?
३३–निकल परमात्मा किसे कहते हैं ?
३४–बहिरात्म भावको त्यागकर परमात्माकी सेवा करनेसे क्या होता है ?

३५-अजीव तत्त्व किसे कहते हैं ?
३६-अजीव तत्त्वके भेद बताओ ?
३७-पुद्गल द्रव्यके कितने गुण हैं ?
३८-धर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?
३९-अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?
४०-आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?
४१-काल द्रव्यके भेद बताओ ?
४२-निश्चय काल किसे कहते हैं ?
४३-व्यवहार काल किसे कहते हैं ?
४४-आश्रव तत्त्व किसे कहते हैं ?
४५-कर्मोंका आश्रव काहेसे होता है ?
४६-बंध तत्त्व किसे कहते हैं ?
४७-आत्माको दुःख देनेवाले भाव कौनसे हैं ?
४८-संवर तत्व किसे कहते हैं ?
४९-निर्जरा तत्व किसे कहते हैं ?
५०-मोक्ष तत्त्व किसे कहते हैं ?
५१-और भी सम्यग्दर्शनके कारण बताओ ?
५२-सम्यक्त्वको दूषित करनेवाले २५ दोष कौनसे हैं ?
५३-सम्यक्त्वके आठ अंगोंके नामलो ?
५४-निःशंकित अंग किसे कहते हैं ?
५५-निःकांक्षित अंग किसे कहते हैं ?
५६-निर्विचिकित्सा अंग किसे कहते हैं ?
५७-अमूढदृष्टि अंग किसे कहते हैं ?
५८-उपगूहन अंग किसे कहते हैं ?
५९-स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं ?
६०-वात्सल्य अंग किसे कहते हैं ?
६१-प्रभावना अंग किसे कहते हैं ?

६२–मद किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारके हैं ?
६३–आठों प्रकारके मदोंका पूरा अर्थ समझाओ ?
६४–अनायतन कितने प्रकारके हैं ?
६५–मूढ़ता कितनी और कौन २ सी हैं ?
६६–लोक मूढ़ता किसे कहते हैं ?
६७–देव मूढ़ता किसे कहते हैं ?
६८–पाखण्ड मूढ़ता किसे कहते हैं ?
६९–सम्यग्दृष्टीके नमन करने योग्य कौन २ हैं ?
७०–सम्यग्दृष्टी इनके सिवाय रागी देव, पाखंडी गुरु, खोटे शास्त्र और धर्म, तिनको नमस्कार नहीं करें; तो क्यों ?
७१–व्रत उपवासादि न करनेवाले सम्यग्दृष्टीकी इन्द्रादिक पूजा करें या नहीं और क्यों ?
७२–सम्यग्दर्शनधारी जीव मरणकर कहां २ नहीं जाता है ?
७३–तीन लोक और तीन कालमें सम्पूर्ण धर्म और सुखकी जड़ क्या है ?
७४–मोक्षमहलमें चढ़नेकी पहिली सीढ़ी बताओ ?
७५–तीसरी ढालका भावार्थ कहो ?

चतुर्थ ढाल.

१–सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?
२–सम्यग्ज्ञान किस समय होता है ?
३–सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें भेद बताओ ।
४–दोनोंमें कुछ लक्षण भेद है या नहीं ?
५–सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानको उदाहरण देकर समझाओ ?
६–समग्ज्ञानके भेद बताओ ।
७–परोक्ष और प्रत्यक्षज्ञान किन्हें कहते हैं ?
८–परोक्षज्ञान कौन २ से हैं और क्यों ?
९–देश प्रत्यक्षज्ञान कौन २ हैं और क्यों ?

१०–सकल प्रत्यक्षज्ञान कौन २ हैं और क्यों ?
११–ज्ञान पानेसे क्या लाभ है ?
१२–ज्ञानी जीव क्षणभरमें कितने कर्म नष्ट कर सकता है ?
१३–क्या आत्माको ज्ञान विना भी सुख होता है ?
१४–कौनसे २ दोषोंको छोड़कर आत्माको पहिचानना चाहिये ?
१५–आत्मज्ञानके बिना मनुष्य जन्म और श्रावक का कुल आदि पाना किस प्रकार दुर्लभ है ?
१६–संसारमें धन–कुटुम्ब आदि साथ देने वाले हैं या नहीं ?
१७–अविचलज्ञानको पानेके लिये क्या उपाय है ?
१८–क्या सम्यग्ज्ञानके विना भी कोई अन्य उपायोंसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है और क्यों ?
१९–पंचेन्द्रीके विषयकी चाहरूपी अग्निको ठंडा करने का उपाय क्या है ?
२०–पाप और पुण्यमें विषाद वा हर्ष करना या नहीं और क्यों ?
२१–संसारमें सारभूत पदार्थ कौन हैं ?
२२–सम्यक्‌चारित्र कब ग्रहण करना चाहिये ?
२३–चारित्रके कितने भेद हैं ? उन्हें समझाओ ?
२४–श्रावकोंके बारह व्रत कौन २ हैं ?
२५–पंच अणुव्रतोंके नामलो ?
२६–अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं ?
२७–सत्याणुव्रत किसे कहते हैं ?
२८–अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं ?
२९–स्वस्त्री संतोषाणुव्रत किसे कहते हैं ?
३०–परिग्रह परमाणाणुव्रत किसे कहते हैं ?
३१–तीन गुणव्रतोंके नामलो ?
३२–दिग्व्रत किसे कहते हैं ?
३३–देशव्रत किसे कहते हैं ?

३४–अनर्थ दण्डव्रत किसे कहते हैं और उनके कितने भाग हैं ?
३५–अपध्यान नामा अनर्थ दण्ड किसे कहते हैं ?
३६–पापोपदेश नामा अनर्थ दण्ड किसे कहते हैं ?
३७–प्रमादचर्या नामा अनर्थ दण्ड किसे कहते हैं ?
३८–हिंसादान नामा अनर्थ दण्ड किसे कहते हैं ?
३९–दुःश्रुति नामा अनर्थदण्ड किसे कहते हैं ?
४०–चार शिक्षाव्रतोंके नाम लो ?
४१–सामायक शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?
४२–प्रोपधोपवास शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?
४३–भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ?
४४–भोग और उपभोगमें अंतर बताओ ?
४५–अतिथि समविभाग किसे कहते हैं ?
४६–अतीचार रहित व्रतोंके पालनेसे श्रावकको कौनसी गति मिलती है ?
४७–बारह व्रतधारी श्रावक मरकर कौन स्वर्ग तक जाता है ?
४८–इस चतुर्थ ढालका भावार्थ कहो ?

पंचम ढाल.

१–बारह भावनाओंका चिंतवन कौन करते हैं और क्यों ?
२–बारह भावनाओंके चिंतवन करने और आत्मज्ञान पानेसे क्या लाभ ?
३–बारह भावनाओंके नाम बताओ ?
४–अनित्य भावना किसे कहते हैं ?
५–अशरण भावना किसे कहते हैं ?
६–संसारभावना किसे कहते हैं ?
७–पंच परावर्तन क्या है ?
८–एकत्व भावना किसे कहते हैं ?
९–अन्यत्व भावना किसे कहते हैं ?
१०–अशुचि भावना किसे कहते हैं ?

११–नव मलद्वार कौन २ हैं ?
१२–आश्रव भावना किसे कहते हैं ?
१३–योग किसे कहते हैं ?
१४–संवर भावना किसे कहते हैं ?
१५–निर्जरा भावना किसे कहते हैं ?
१६–लोक भावना किसे कहते हैं ?
१७–बोधि दुर्लभ भावना किसे कहते हैं ?
१८–धर्म भावना किसे कहते हैं ?
१९–इस ढालका भावार्थ बताओ ?

षष्ठ ढाल.

१–द्रव्य अहिंसा किसे कहते हैं ?
२–भाव अहिंसा किसे कहते हैं ?
३–महाव्रतोंके नाम बताओ ?
४–महाव्रत किसे कहते हैं ?
५–अहिंसा महाव्रत किसे कहते हैं ?
६–सत्य महाव्रत किसे कहते हैं ?
७–अचौर्य महाव्रत किसे कहते हैं ?
८–ब्रह्मचर्य महाव्रत किसे कहते हैं ?
९–परिग्रहत्याग महाव्रत किसे कहते हैं ?
१०–समिति किसे कहते हैं ?
११–समितिके भेद बताओ ?
१२–ईर्या समिति किसे कहते हैं ?
१३–भाषा समिति किसे कहते हैं ?
१४–एषणा समिति किसे हैं ?
१५–आदाननिक्षेपण समिति किसे कहते हैं ?
१६–व्युत्सर्ग समिति किसे कहते हैं ?
१७–ध्यानी मुनिका स्वरूप बताओ ?

१८–गुप्ति किसे कहते हैं ?
१९–गुप्ति कितनी और कौन २ सी हैं ?
२०–तीन गुप्तियोंकी परिभाषा बताओ ?
२१–मुनिकी पांच क्रियाएं कौनसी हैं ?
२२–प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?
२३–साधुके २८ मूलगुण कहो ?
२४–साधुके शेष ७ गुणोंके भेद बताओ ?
२५–मुनिकी समताका वर्णन करो ?
२६–तप कितने प्रकारके हैं और तप किसे कहते हैं ?
२७–बहिरंग तपके भेद बताओ ?
२८–अंतरंग तपोंके नामलो ?
२९–धर्म कितने प्रकारके हैं ?
३०–रत्नत्रय किसे कहते हैं ?
३१–मुनिका सकलचारित्र किसप्रकार है बतलाओ ?
३२–निश्चय आत्मचारित्र किसे कहते हैं ?
३३–स्वरूपाचरणकी महिमा बताओ ?
३४–ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयका अर्थ बताओ ?
३५–ध्याता, ध्यान और ध्येयका अर्थ बताओ ?
३६–शुद्ध आत्मानुभवका स्वरूप समझाओ ?
३७–आत्मामें स्थिर होनेपर जो सुख है उसे वर्णन करो ?
३८–अर्हंत और सिद्ध अवस्था कब होती है ?
३९–कौन २ कर्मोंके नाश होनेपर सिद्धोंके कौन २ गुण प्रगट होते हैं ?
४०–सिद्ध कहां हैं और कबतक रहेंगे ?
४१–शुद्ध आत्माकी स्वच्छताका वर्णन करो ?
४२–पंडित दौलतरामजीका अंतिम उपदेश वर्णन करो ?
४३–छठीं ढालका भावार्थ बताओ ?